बेहद्दी या आपार के परे



परमसन्त परमदयाल
पं. फकीर चन्द जी महाराज

बेहद्दी या आपार के परे

कबीर का शब्द

हद में रहे सो मानवा, बेहद रहे सो साध।
हद बेहद दोनों तजे, ताका मत अगाध॥

एक फकीर का शब्द

हद टपे सो औलिया, बेहद टपे सो पीर।
हद बेहद दोनों टपे, ताका नाम फ़कीर॥

- दयाल फ़कीर

विषय सूची

क्रमांक **विषय**

॥ राधा स्वामी ॥

अमरपद

अमर फल बिरला कोई खाय।

अम्बर ऊपर डेरा डाले, अमृत पी पी तृप्ताय॥

जीवे न मरे न जग में आवे,

आवागमन के फंद कटाय।

कर्म करे और बने न करता, अहंभाव

चित में नहिं लाय॥

बन्ध निर्बन्ध न मुक्त न अमुक्त, इसकी
महिमा वरणी न जाय।
हद बेहद दोनों से न्यारा, अगम
अलख में बासा पाय॥
बसे खसे नहिं सगुण न निर्गुण, कोई
कैसे कह कर समझाय।
रूप रंग रेखा नहिं उसमें, नाम
अनाम का भेद मिटाय॥
ऐसा गुरुमुख गुरु का प्यारा, बिन
बानी नित गुरु गुन पाय।
राधास्वामी दया पात्र सोई सांचा,
झूठ का भरम नसाय॥

भूमिका

बेहद्दी (अपार) से परे के शब्द दिमाग में संशय उत्पन्न कर देते हैं। परम सन्त दयाल फकीर (फकीर चन्द जी महाराज) साधारणतया अध्यात्म को ऊँची श्रेणी पर ही बोलते हैं। पहिले भी बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं मगर यह 'बेहद्दी या अपार के परे', की पुस्तक लिखकर बुद्धिमान, विद्वान और समझ-बूझ वालों को असलियत से जानकार करने का प्रयत्न किया है। इसमें उन्होंने ऐसे गूढ़ रहस्यों को खोला है और बड़ी सरल भाषा में वर्णन किया है कि कोई भी समझ-बूझ वाला इससे लाभ प्राप्त किये न रहेगा। इस समय दुनिया में अनेकानेक धर्म पंथ हैं और दिन प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं मगर आश्चर्य है कि कोई धर्म या पंथ सच्चे अर्थों में एकता की शिक्षा नहीं देता। कबीर साहिब

तथा गुरु नानक ने अपनी शिक्षा का वाणियों द्वारा बहुत कुछ प्रचार किया मगर उनके अनुयायिओं ने या तो उनकी शिक्षा को समझने की कोशिश नहीं की या जान-बूझकर उसको बताया नहीं। परम दयाल जी महाराज ने संतों की शिक्षा को अपने निजी अनुभव के आधार पर प्रगट किया है और बताया है कि असली धर्म क्या है, गुरु क्या है, गुरु का काम क्या है, आत्मा क्या है, सुरत क्या है, मन क्या है।

मन तक या मन के अन्दर रहने तक मनुष्य किस प्रकार जीवन व्यतीत करे और मन से परे कैसे जाये। बेहद्दी में क्या है ? मन को एकाग्र करने के लिए क्या किया जाये? उनकी शिक्षा का सारांश यह है कि इस समय दुनिया में धर्म और पंथों के कारण जो घृणा द्वेष और भेद-भाव मनुष्य को मनुष्य से हो रहा है उसको सच्ची शिक्षा देकर और निज अनुभव बताकर बताया जावे ताकि भोले-भाले जीव झूठे गुरुओं की लूट से बच सकें

और सुख शान्ति से अपना जीवन व्यतीत कर सकें क्योंकि यह सब काल और माया का खेल है।

आपका कथन है कि कोई भी मनुष्य किसी वर्णात्मक नाम का सुमिरन करके अपने सांसारिक कार्यों को सफलता पूर्वक कर सकता है। कोई राम-राम कहे, कोई कृष्ण-कृष्ण कहे, अल्लाह कहे, वाहेगुरु कहे, गौड कहे अथवा किसी और नाम से सुमिरन करे वह एक ही पद पर पहुँच सकते हैं। एक नास्तिक से तो उन्होंने यहाँ तक कहा कि यदि तुम को किसी वर्णात्मक नाम पर विश्वास न आवे तो एक दो तीन से 100 तक गिनते रहा करो और अपने ध्यान को दो भौओं के बीच में जमाया करो। मन एकाग्र हो जायेगा और उस नास्तिक को इसमें सफलता मिली। इस से सिद्ध हुआ कि एकाग्रता प्राप्त करने के लिए कोई एक ही विशेष नाम नहीं है। प्रयोजन तो मन एकाग्र करने से है।

दूसरे आज कल के गुरुइज़म में जो यह बताया जाता है कि कोई विशेष गुरु अभ्यास में प्रगट होकर अन्तर में दर्शन देता है दूसरा नहीं। इस भ्रम को भी परमदयाल जी महाराज ने इतना स्पष्ट किया है कि आज तक खुले शब्दों में किसी ने नहीं कहा अथवा मेरे सुनने और देखने में नहीं आया और न कोई वाणी इतनी स्पष्ट दृष्टि-गोचर हुई कि इस भेद को खोला गया हो। प्राचीन संतों और ऋषियों ने भी इसे गुप्त रखा और गुरु शिष्य के बीच ही चलता रहा। कबीर साहिब ने भी अपने गुरमुख शिष्य धर्म दास को यह रहस्य बताकर हुक्म दिया कि:

धर्म दास तोहि लाख दुहाई।
सार भेद बाहर नहिं जाई॥

राधास्वामी दयाल ने भी अपनी वाणी में कहा है:

संत बिना कोई भेद न जाने, वे तोहि कहें अलग में॥

परम दयाल जी खुले शब्दों में कहते है कि मेरा रुप जो लोगों के अन्तर प्रगट होता है वह मैं नहीं होता। न मरते समय किसी को दर्शन देकर साथ ले जाता हूँ। किसी को अभ्यास में भी दर्शन नहीं देता। लोग जो मुझे विभिन्न देशों और प्रान्तों से पत्र द्वारा बताते हैं कि मैंने अमुक समय जाग्रत में उनसे बातें की, उनका काम किया, उनको स्वप्न में दवा बताई और वह स्वस्थ हो गया। ऐसे सैकड़ों चमत्कार नित्य सुनने में आते हैं। उन में 60 प्रतिशत आदमी ऐसे होते हैं जिनके नाम और शक्ल भी स्मरण नहीं रहते और न परिचित होता हूँ। मुझे यह भी पता नहीं होता कि कब और किसने उनकी सहायता की। चूँकि परमदयाल जी सच्चाई का बाना ओढ़े है। उन्होंने इस प्रकार की बातों के प्रचार को मना कर दिया, क्यों कि इनमें यदि कोई प्रधानता है तो उनकी है जिनके साथ यह चमत्कार होते हैं।

उनका कथन है कि यह सब उनके श्रद्धा विश्वास का खेल है। इसमें मेरा कोई हाथ नहीं हैं। हर एक व्यक्ति अपने मन को एकाग्र करके अथवा किसी भी गुरु या देवता के ध्यान से श्रद्धा विश्वास के साथ एकाग्र करके अपना काम बना लेगा। यह सब खेल मनुष्य के अपने ही विश्वास का है। कहते हैं कि जब मुझे पता नहीं होता कि कौन किस समय मेरा ध्यान कर रहा है और मेरे रुप से जो उसका अपना ही संकल्प होता है, उससे अपनी मनोकामना पूरी करता है तो फिर किसी गुरु को या मुझे क्या हक है कि उसका यश (क्रेडिट) मैं लूँ। परम दयाल जी महाराज ऐसे लोगों के घर का पानी तक नहीं पीते। उनका कथन है कि ऐसा व्यक्ति चूंकि मेरी सेवा इस कारण करेगा कि मैं उसके अन्तर प्रगट हुआ और उसकी मनोकामना पूरी की मगर चूंकि मैं बिल्कुल अनजान होता हूँ, तो मेरा कोई अधिकार इससे सेवा लेने का नहीं है। हाँ, सचमुच मैंने सहायता की हो या मरते समय

दर्शन दिये हों या जाग्रत में किसी से बातें की हो तो सेवा लेना पाप नहीं है। अन्यथा उसकी सेवा मेरा सत्यानाश कर देगी। मैं उसके बदले में सेवा लेना डाका समझता हूँ या 420 समझता हूँ। भोले भाले जीवों से बात को परदे में रखकर सेवा लेना महापाप है।

बड़े बड़े महात्मा या गुरु जब परम दयाल जी से मिले तो उन्होंने यह स्वीकार किया कि आपका उपरोक्त कथन ठीक है हम भी किसी को अभ्यास, जाग्रत या स्वप्न में दर्शन नहीं देते और न किसी को मरते समय साथ लें जाते हैं मगर कितने दुख की बात है कि इस भेद को न जानने से संसार वाले विभिन्न धर्म और पंथों में बँट गये। वह कहते हैं कि किसी का यह कहना कि राम ही दुनिया में सहायक हो सकता है या मेरा गुरु ही बड़ा है दूसरा नहीं अथवा वो सुमिरन मैं जिस वर्णात्मिक नाम से करता हूँ वही ठीक है और शेष गलत है, यह भूल-भ्रम और अज्ञान

है। यदि कोई गुरु या महात्मा वास्तव में भोले-भाले जीवों की सहायता उनके अन्तर प्रगट होकर करते हैं या मरते समय साथ ले जाते हैं या किसी को स्वप्न में दवा बता जाते हैं तो उनको इस बात को स्पष्ट शब्दों में प्रगट करना चाहिये और महाराज जी के कथन को खुले आम गलत सिद्ध करना चाहिये।

यदि उनको भी उपरोक्त बातों की जानकारी नहीं होती तो फिर सब महात्मा और सन्तों को एक प्लेटफार्म पर इक्ट्ठे होकर सच्चाई को स्पष्ट शब्दों में प्रगट करना चाहिये और यह भी बताना चाहिए कि तुम किसी भी गुरु या किसी वर्णात्मिक नाम से एक ही पद पर पहुँच सकते हो।

बेहद्दी या आपार के परे भी पुस्तक पर कुछ सम्मति देना मेरे जैसे तुच्छ बुद्धि वाले के लिये एक विचित्र सी बात है। परम दयाल जी महाराज ने यह लेख पर्वतों के एकान्त स्थान वशिष्ट कुण्ड में बैठकर लिखवाये थे। उस अवस्था का वर्णन करना,

जहाँ पर मन, बुद्धि, आत्मा तथा सुरत भी मौन है, किसी परम सन्त का ही काम है। वह तो केवल एक अवस्था है जो केवल अनुभव से सम्बन्ध रखती है। लेखनी में नहीं आ सकती।

आत्म ज्ञान की प्राप्ती के मार्गों में से एक मार्ग सुरत शब्द योग है जिसको संतो ने अपनाया। उसकी सब श्रेणियों का वर्णन परम दयाल जी ने संक्षेप में कर दिया है और अन्य पुस्तकों में सुविस्तार से भी व्याख्या की है मगर यह पुस्तक बेहद्दी या आपार से परे की है इसलिए पाठक शब्दों पर न जाकर इसके सार भाव की और ध्यान दें। जो कुछ मैं परमदयाल जी के चरणों में बैठकर समझ सका वह यह है कि गुरु अज्ञानी जीवों के साथ आज्ञानी बनकर खेल खेलता है। यदि कोई सच्चे गुरु की बात को समझे और उस पर चले तब वह इस पद पर पहुँच सकता है इसलिए गुरु की महिमा है गुरु के वचनों पर अमल करना गुरु सेवा है। इसी से कल्याण होगा।

मैंने महाराज जी से कई बार प्रश्न किया कि आपने इस सच्चाई को, जिसे आज तक सब महान पुरुषों ने पर्दे में या गुप्त रख कर केवल संकेत किया, क्यों प्रगट किया। आपने कहा कि यह संसार कर्म क्षेत्र है कर्म में नीयत का सवाल रहता है। इस रहस्य को छुपाने से, जिन्होनें छुपाया, उसका मान-सम्मान और स्वार्थ शामिल था। इसलिए इन समस्त धर्म और पंथों के कार्य से मानव जाति में शान्ति नहीं आई। यही कारण है कि सत्यमेव जयते कहीं भी नहीं रही।

जितने धर्म और पंथ संसार में फैले इसका परिणाम यह हुआ कि मानव जाति में एकता व सच्चाई समाप्त हो गई। मुझे इस सत्यता के प्रगट करने के लिए इस संसार में कुदरत ने फकीर बनाकर भेजा है। दाता दयाल की आज्ञा भी ऐसी ही है कि मैं निर्बल अबल अज्ञानी जीवों को इन धर्म पंथों की गलत शिक्षा से जो यह लुटे जा रहे हैं उनको सचेत कर दूँ और इन गुरुओं

की आँखें खोल दूँ कि उनके पर्दा रखने के कारण जो अज्ञानी जीवों से अपना मान व धन लेते हैं और मान और धन लेकर डेरे और गद्दियाँ बनवाते हैं, उनका अपना जीवन गंदा हो रहा है। यह कारण है कि मैंने इस रहस्य को प्रगट किया है।

चरण सेवक

मास्टर मोहन लाल

(होशियारपुर)

अब यह पुस्तक "फ़कीर लाइब्रेरी चैरिटेबल ट्रस्ट, होशियारपुर" के द्वारा बिना किसी शब्दों की अदलाबदली के पुनर्प्रकाशित की गई है। -सचिव

गुरु स्वरुप

सत्संगियों

की

सेवा

में

भेंट

॥राधा स्वामी॥

भेंट

(व्यास पूजा या गुरु पुर्णिमा के दिन)

दया करो कर्त्तार, मेरा कर दो आप सुधार।

भवसागर में गोते खाती, कभी नीचे कभी ऊपर जाती।
माया नित भरमाती सताती, सूझे वार न पार॥ दया०॥

आशा तृष्णा बन्ध बँधानी, माया मोह के फाँस फँसानी
छूटन की कोई विधि न जानी, मन व्यापा हंकार॥ दया०॥

बुद्धि नहीं ठिकाने मेरी, चित रहती है हेरा फेरी।
चंचलता ने चहुँ दिसि घेरी, उरझ रहीं संसार॥ दया०॥

शरण भी लेना मैं नंहिं जानूँ, शरणागत गति नहीं पहिचानूँ।
किसको मानूँ किसको न मानूँ, भ्रम से अब गई हार॥ दया०॥

कैसे सच्ची विनती करती, औगुन में नित खपती मरती।

बोझ विपत्ति का सिर पर धरती, अब हो गई लाचार॥ दया०॥

दिन को खाना रात को सोना, विपत्ति पड़े आपत्ति से रोना।

द्वेष बीज घट खेत में बोना, यही मेरा व्यवहार॥ दया०॥

कर्म धर्म नहिं सुमिरन ध्याना, नहिं भक्ति न विवेक न ज्ञाना।

अब तो दे मुझे ठौर ठिकाना, राधास्वामी की बलिहार॥

आज व्यास पूजा का दिन है। यह प्रार्थना का शब्द जो तुमने सुना है यह मेरे जीवन का कच्चा-चिट्ठा है। मेरा ही नहीं किन्तु हर एक सच्चे आदमी का जो इस रास्ते पर चलता है और सुख शान्ति चाहता है। उसके मन में ऐसे भाव जो इस शब्द से प्रगट होते हैं स्वभाविक पैदा होते हैं। शब्द चाहे दूसरे ढंग के

हों, वाणी किसी और प्रकार की हो मगर भाव ऐसे ही होगें। इस शब्द के अन्त में लिखा है:

कर्म धर्म नहिं सुमिरन ध्याना, नहिं भक्ति न विवेक न ज्ञाना॥

यहाँ अन्तिम कड़ी में लिखा है कि सुरत (या जीव) आपत्ति में राधास्वामी से पुकार करती है कि आपत्ति दूर करने वाले राधास्वामी की बलिहारी जाऊँ। राधास्वामी मत में राधास्वामी को सतगुरु मानते हैं। मैं छोटी उम्र में उस भगवान के आगे इस प्रकार की प्रार्थना किया करता था। एक बार प्रार्थना करता-करता 24 घंटे रोया तो उस पुकार के उत्तर में एक दृश्य सामने आया जिसके द्वारा दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज के चरण कंवल में चला गया था। उन्होंने मुझे ईश्वर भक्ति छुड़वाकर गुरु भक्ति का ख्याल दिया था। सब प्रकार के साधन, योग, जप आदि जो मैं करता था या दुनिया करती है

उसे छुड़वाकर उन्होंने गुरु भक्ति की ओर आकर्षित किया। वह लिखते हैं:

मन तू सोच समझ पग धार॥

बिन समझे कोई पार न पावे भटके बारम्बार॥
संशय दुविधा और चतुराई, यह अज्ञान विकार।
कोई नर पशु कोई त्रिया पशु, गुरु पशु कोई गंवार॥
वेद पशु है सबसे न्यारा, समझो विवेक विचार।
माया पशु माया का बंधुआ, मुक्ति पशु स्वीकार॥
भक्ति पशु बन्धन नहिं काटे, बूढ़ा कालीधार।
ज्ञान पशु की क्या करूँ निन्दा, वे ग्रंथन के लार॥
जड़ चेतन की गांठ न खोले उरझ उरझ रहा हार।
योग पशु बंधे योग की रसरी, बैठे आसन मार॥
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, गुरु सेवक हुआ पार॥

यह जितना हमारा दुख है यह हमारे मन के कारण ही है। मन ही शान्ति की खोज करता है , मन ही उन्नति की खोज करता है और मन ही दुखों से घबराता है। मैं तो राम-कृष्ण का भक्त था। मेरा भाग्य मुझे वहाँ ले गया जहाँ मेरे ख्याल को बदल दिया गया। मेरे नाम यह शब्द है:

मन तू सोच समझ कर पग धार.............।

मैं अपनी कल्पना मिटाने के लिये रोया करता था। संसार में प्राणी मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों आदि में आकर अपने दुख और कल्पनायें मिटाने के लिए प्रार्थना करते हैं। दाता दयाल लिखते हैं कि ऐ मन! तू जो इन उपायों को करता है थोड़ा सोच-समझ से काम ले।

कोई नर पशु कोई त्रिया पशु, गुरु पशु कोई गंवार।
वेद पशु है सब संसारा, समझ विवेक विचार॥

मैं वेद या हिन्दू धर्म के संस्कारों में आया हुआ था। मैं रोया करता था कि मुझे शान्ति मिले। हम दुखी क्यों होते हैं ? स्त्री के रूप को न समझकर उस के जाल में फँस जाते हैं। गुरु के सच्चे रूप को न समझकर गलत गुरु भक्ति में फँस जाते हैं। हम संसार के आदमियों के रूप को नहीं समझते और वेदों के सार भाव को न जानकर यत्न प्रयत्न करते हैं कि शान्ति मिले। गुरु नानक साहब ने ऐसे प्रयत्न करने के पश्चात अन्त में कहा है:

नानक के संशय मिटे, सतगुरु मिले कबीर॥

इसलिये संतों के मार्ग में गुरु की महिमा है जिसके कारण सच्चा ज्ञान और सच्चा विवेक मिलता है।

आज व्यास पूजा का दिन है। मैं दातादयाल महर्षि (शिव) जी के अहसान का स्मरण करके यह दिन मना रहा हूँ। माया क्या है इसकी समझ मुझे नहीं आती थी। हम माया को

धन-सम्पत्ति समझते हैं, सांसारिक पदार्थों को माया समझते हैं मगर मन की भी माया है इसकी समझ मुझे दाता दयाल ने दी। मैं मुक्ति चाहता था। मुझे मुक्ति के रुप का पता मिल गया। किसी वस्तु के ख्याल में फँस जाना बन्धन है और ख्याल से छुटकारा पाना मुक्ति है। जो संसारी लोग गुरु को याद करते रहते हैं, ईश्वर को स्मरण करते रहते हैं या दुनिया को याद करते रहते हैं यह सब बंधुये हैं।

आज मैं गुरु पूजा के दिन बोल रहा हूँ। दुनिया चकित होगी कि गुरु पूजा करने वाले, ईश्वर पूजा करने और मुक्ति की इच्छा वाले सब बन्धुये हैं या बन्धन में है। क्या यह रहस्य समझने की किसी में सामर्थ्य है? मस्तिष्क फेल हो जाता है मगर इसकी समझ नहीं आती। कहा है:

माया पशु माया का बन्धुआ, मुक्ति पशु स्वीकार।
भक्ति पशु बन्धन नहिं काटे, बूढ़ा काली धार॥

राधास्वामी पंथ में आने पर प्रण किया था कि जो इस मत से मिलेगा संसार को बताऊँगा। आज गुरु पूजा के दिन बताता हूँ। अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि क्या यह ऊपर लिखा शब्द ठीक है। उत्तर मिलता है- 'हां' ठीक है मगर इसे समझेगा कौन? केवल वह जो गुरु सेवक होगा। दूसरा नहीं। मैंने सारा जीवन इस सच्चाई की खोज में व्यतीत किया। मुझे यह समझ न आती थी। इस समझ को देने के लिये दातादयाल ने मुझे गुरु पदवी दी। इस पदवी पर आने से मुझ को इस वाणी की सत्यता का विश्वास हुआ। वह कैसे? केवल इस ख्याल से जिनका उल्लेख मैं बार-बार करके लोगों को बताया करता हूँ कि मैं किसी के अन्तर में, जाग्रती में, समाधि में या स्वप्न में प्रगट नहीं होता जबकि प्रतिदिन सत्संगी लोग मेरे बारे में भिन्न-भिन्न बातें लिखकर भेजते हैं अथवा जुबानी कहते हैं। जैसे जाग्रत में लड़कों के परीक्षा हॉल में पर्चे हल करवाना, किसी को मरते

समय दर्शन देना, किसी बच्चे की टाँग पत्थर के नीचे दबी हुई को पत्थर उठाकर निकाल देना, जमुना की रेती में दो साधुओं को दर्शन देकर जाग्रित में उनको आदेश देना आदि-आदि ऐसी असंख्य बातें मेरे सम्बन्ध में कही जा रही हैं मगर मैं उनमें से किसी के हालात से जानकार तक नहीं होता। इसलिए मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि जो कुछ किसी के अन्तर प्रगट होता है वह उसका अपना ही विचार भाव और विश्वास है। असलियत मन के विचारों से परे कुछ और है।

इस बार जुलाई 1966 को मैं कुल्लू गया। उससे आगे मनाली चला गया। मनाली से वशिष्ट कुण्ड पहुँचा। वशिष्ट कुण्ड के चारों ओर चार ऋषियों के आश्रम हैं जहाँ पर उन्होंने अभ्यास किया। वह हैं- (1) मनुजी का आश्रम (2) वशिष्ट कुण्ड (3) भृगुजी को आश्रम (4) व्यास जी का आश्रम। मनु जी ने क्या शिक्षा दी? यही कि हमारी सांसरिक अवस्थाओं को अनुकूल

बनाने के लिये नियम बनाये कि जिन नियमों पर चलकर साँसारिक जीवन, सामाजिक जीवन ठीक रह सके।

भृगु जी की शिक्षा में कर्म फिलोसफी है कि जैसे-जैसे हमारे विचार या भाव हैं उनके अनुसार हमें जन्म मिलते हैं। ज्योतिष का सब से बड़ा ग्रन्थ 'भृगु संहिता' इस नियम के आधार पर है।

वशिष्ट जी ने कहा है कि संसार का यह जितना खेल है सब मानसिक या सूक्ष्म प्रकृति का है। यह मनोमय जगत है या संकल्पमय संसार है।

व्यास जी ने ज्ञान दिया। व्यास जो ज्ञान दाता कहे जाते हैं कि संसार का खेल शारीरिक मानसिक प्रकृति का है मगर इससे परे अर्थात् संकल्प की रचना से परे क्या है इसकी शिक्षा भी देते हैं। मेरे सतगुरु महर्षि शिवब्रतलाल जी को हुजूर बाबा

सावन सिंह व्यास वाले कहा करते थे कि महर्षि जी राधास्वामी मत के व्यास जी हैं।

गुरु सेवक हुआ भव पार॥

इस संकल्प की दुनिया से बाहर निकलने की शिक्षा मुझे महर्षि जी महाराज ने व्यास जी के रूप में दी। मैं बँधा हुआ था, समझ न आती थी। अब जब इन ऋषियों के वातावरण का ख्याल आया तो अपने जीवन का अनुभव याद आ गया। मनुष्य जो कुछ अनुभव करता, भान करता है। वह कुल का कुल माया है, संकल्प है। मैं इस माया या संकल्प से परे जाने को विवश हो गया। इस संकल्प से परे क्या है? वह वह है जहाँ से संकल्प पैदा होता है। यह संकल्प प्रकाश या नूर से उत्पन्न होता है। हिन्दू-शास्त्रों में सावित्री, ब्रह्म, के शब्द मौजूद हैं। मैं जब प्रकाश में गया तो महसूस हुआ कि जहाँ प्रकाश है वहाँ गति है। जहाँ गति है वहाँ शब्द है।

जब मैं प्रकाश और शब्द के मंडल में जाता हूँ तो सोचता हूँ कि इस शब्द को कौन सुनता है, प्रकाश को कौन देखता है और वह वस्तु जो इनको सुनती और देखती है वह क्या है? वह मेरा अपना आप है। संत उसे सुरत कहते हैं। यही अवस्था मुझ पर हर समय नहीं आती। जब आती है तो मेरे साथ क्या बीतती है? तब मुझे न संसार ही सताता है न मन, न देह। न शब्द रहता है न प्रकाश। तो इस अवस्था में मैं क्या होता हूँ? कौन समझे और कौन वर्णन करे। तुम इस अवस्था में आ नहीं सकते मगर अनुमान तो लगा सकते हो कि क्या होता है। चिराग गुल पगड़ी गायब ! न दुनिया न दुनिया का ख्याल। वहाँ जाकर मन की सम्पूर्ण कुरेद, खोज समाप्त हो जाती है। कुल बंधन टूट जाते हैं। क्या हो जाता है किसी को वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं है।

हद टपे सो औलिया, बेहद टपे सो पीर।
हद बेहद दोनों टपे, ता का नाम फकीर॥

कबीर साहिब का कथन है:-

हद में रहे सो मानवा, बेहद रहे सो साध।
हद बेहद दोनों तजे, ता का मत अगाध॥

मेरी जो कुरेद या खोज थी वह यहाँ समाप्त हो गई। इस वशिष्ठ कुण्ड और ऋषियों की भूमि में आकर मैंने क्या किया ? पाँच-छः सत्संग दिये। मोहनलाल साथ थे, वह लिखते गये। इस पुस्तक का नाम 'बेहद्दी से परे' (अपार के परे) रखा है। मैंने जो कुछ राधास्वामी मत से प्राप्त किया, वह वर्णन कर दिया। इस पुस्तक को मैं धार्मिक जगत के लोगों के चरणों में भेंट करता हूँ। आप कहेंगे कि इस पुस्तक को गुरु चरणों में क्यों भेंट नहीं करते ! लोगों को क्यों भेंट करते हो?

वह इसलिए कि दातादयाल इस समय संसार में नहीं है और यदि कोई दातादयाल है तो वह ऊपर नीचे, दांये, बाँये, भू-

भुंवः स्वः, महः जनः तपः सब जगह है। तो मैं किसे रिझाऊँ। चूँकि यह ज्ञान मुझे सत्संगियों की बदौलत मिला, मैं इन्ही को भेंट करता हूँ। दाता दयाल ने एक शब्द में मुझे लिखा था

कोई बताये मैं कैसे गुरु को रिझाऊँ।
डाल डाल में पात पात में मैं तो गुरु को पाऊँ ॥आदि-2॥

सत्संगियों से ज्ञान प्राप्त करने के बारे में दातादयाल जी ने मुझे कहा था, फकीर ! तुम को राधास्वामी दयाल के दर्शन सत्संगियों के रुप में होंगे। उस समय मैं मालिक और परम शान्ति की खोज में अशान्त था। आज 62 वर्ष की आयु में इन सत्संगियों से, जो मेरी पूजा करते हैं, मुझे फूल माला पहनाते हैं, पैसा भेंट करते हैं, मुझे प्रसन्नता नहीं मिलती। जिन सत्संगियों ने मुझ फकीर चन्द को गुरु का रूप समझ रखा है, वह असलियत से अनभिज्ञ है। यह ठीक है कि भेंट करना, फूल चढ़ाना भी इस माया देश का व्यवहार है। हम जिस देश में रहते हैं यदि उसके

कानून को तोड़ेगें तो विद्रोही कहलायेंगे। इसी तरह फूल आदि चढ़ाने से मनुष्य का मन शुद्ध होता है। भक्ति भाव आ जाता है। मैं इस सेवा भाव का खंडन नहीं करता। हर बात अपनी जगह पर आवश्यक है।

मैं इस पुस्तक के प्रकाशन में किसी दूसरे से सहायता लिये बिना (115) रु. अपने पास से खर्च कर रहा हूँ और (85) रु० मास्टर मोहन लाल खर्च कर रहे हैं, जो मेरे मित्र हैं।

तो गुरु भक्ति से क्या मिला? यह ज्ञान मिला कि मैं कौन हूं। एक महातत्व है। यह सब रचना उस महातत्व की किरणों, धारों और रेडीयेशन से प्रकट हुई है और उसी में समा जाती है। उसी रेडियेशन से कहीं चन्द्रमा, कहीं सूर्य, कहीं तारागण आदि बनते हैं। और भी अनन्त लोक हैं। प्रत्येक लोक में जीवन है जो महातत्व की किरणों से पैदा होता और उसी में समा जाता है।

जब यह ज्ञान हुआ तो फिर मेरा वह आवेश जिसमें भक्ति, योग जप, तप, कर्म धर्म थे वह सब समाप्त हो गये। अब मैं जिस अवस्था में चला गया हूँ वह है विदेह गति की या दिव्य पुरुष की अवस्था।

वह नाम क्या है जो हमको दिया गया और सब सत्संगी जपते हैं। वह शब्द है। शब्द क्या है?

शब्द बहु अन्तरा, सार शब्द चित्त देय।
जा शब्दे साहब मिलें, सोई शब्द गह लेय॥

(कबीर)

आज कबीर पंथ वाले और राधास्वामी मत वाले शब्द योग के पीछे पड़े हैं। मैं भी पड़ा था। मुझे जीवन का अनुभव कहाँ ले गया? उसी सार शब्द की ओर जिसको कबीर ने भी संकेत किया है:-

शब्द शब्द सब कोई कहे, वह तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवे नहीं, निरख परख कर लेय॥
शब्द भया तब जानिये, रहे शब्द के माहिं।
शब्द से शब्द प्रगट भया, दूजा देखे नाहिं॥

कबीर साहिब का कथन है कि शब्द का सुनना और बात है और शब्द में लय होना और है। जब तक शब्द के बीच में तुम जाओगे नहीं और शब्द को सुनते-सुनते जब तक किसी की सुरत अशब्द गति में नहीं पहुँच जायेगी तब तक उसे अनुभव ज्ञान नहीं होगा लाख कोई शब्द योग का अभ्यासी हो, जब तक गुरु का संसर्ग नहीं मिलता इस गति को प्राप्त नहीं कर सकता। यह गति है संसार के समस्त बन्धनों से छूट जाना। तुम सत्संगी हो। अभ्यास भी करते हो। अपनी अपनी रहनी को देखो ! क्या तुम इस रचना के समुद्र में शारीरिक, मानसिक दुख-सुख नहीं उठाते ? कई डाक्टर हैं, वकील हैं और साधु सन्त बने हुये हैं,

लोगों को सत्संग भी कराते हैं वह अपनी रहनी पर दृष्टि डालें कि उन पर क्या बीतती है।

बिन सत्संग जो शब्द में पचते, वह भी मूरख जान॥

यह उस पवित्र विभूति का वचन है जिसने नाम की महिमा का डंका बजाया है। कहते हैं जिस किसी ने पूर्ण गुरु का सत्संग नहीं किया और अपने अन्तर शब्द सुनता है वह मूर्ख है। मैं जानता हूँ कि मैं बेहद्दी के स्थान से परे जाकर पांचवें पद की बातें बोल रहा हूँ चूँकि प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा इसलिये विवश कह रहा हूँ। दूसरे गुरु ऋण था। मैं गुरु का सेवक हूँ इसलिये काम करता हूँ। गुरु भक्त का बेड़ा पार नहीं होता, गुरु सेवक का होता है। परमार्थ में गुरु की भक्ति सबसे ऊँची श्रेणी है मगर अन्तिम है। मैंने गुरु ऋण उत्तीर्ण होने के लिये इस शिक्षा को स्पष्ट कर दिया। यह मेरे वश में नहीं। कुदरत ने मेरे दिमाग को इस काम के लिये बनाया है। मैं आया ही

इसलिये हूँ कि निबल, अबल और अज्ञानी जीवों की सहायता करूँ। अब तुम स्वयं सोचो कि जिन जीवों के अन्तर उनके गुरु के रुप प्रगट होते हैं और अपनी भक्ति के अनुसार धन देते हैं और लुटते हैं वह भोले-भाले जीव भ्रम और अज्ञान में आकर ऐसा करते हैं और गुरु उन जीवों को असली भेद बताते तक नहीं और लूटते हैं। मैंने उन लोगों के लिये इस रहस्य को प्रगट किया है कि जो अज्ञान से लुटे जा रहे हैं, वह लूट से बच सकें।

किसी के अन्तर राम प्रगट हो गया। उसने समझा कि सचमुच में राम आ गये। किसी के अन्तर कृष्ण प्रगट हो गये उसने समझा कि सचमुच श्री कृष्ण जी आ गये। उन्होंने राम और कृष्ण के मन्दिर बनवा डाले। किसी के अन्तर गुरु प्रगट हुये। उसने यह समझ कर कि गुरु महाराज सचमुच में आ गये, उसने गुरुद्वारे में धन लगा दिया। यह संतों की शिक्षा नहीं है। सन्तों की शिक्षा तो भवसागर से पार जाने की है। वह तब होगा जब

शरीर और मन से पार हो जाओगे। शब्द और प्रकाश से भी पार जाओगे अन्यथा हर्ष, शोक, आनन्द, निःआनन्द की लहरें सदा उठती रहेंगी। मेरे मित्र पं० पुरुषोत्तमदास जी जब मेरे साथ बसरा बगदाद में थे तब कहा करते थे, मास्टर जी कुछ बताओ। मैं कहा करता था कि यदि कुछ मिल गया तो बता जाऊँगा। अब बताता हूँ। शिक्षा ऊँची है। इसको समझना सरल काम नहीं। मगर चूँकि यह शिक्षा कोई देता नहीं, हर जगह स्वार्थ और धन मान की इच्छायें मौजूद हैं। इस दशा को देखकर कुदरत ने मेरी सुरत और मन को ऐसा बनाया कि इस रहस्य को खोल जाऊँ।

जब मैं अपने-आपको सन्त सतगुरु कहता हूँ तो कुछ लोग मुझे अहंकारी समझते हैं मगर मैं अहंकारी नहीं हूँ। संसार वालों को समयानुसार सच्ची शिक्षा देता हूँ। यही सन्त सतगुरु का काम है कि भ्रम में आये हुये जीवों को चेतावनी दे कि तुम करोड़ों रुपया इन पंथों में देने की बजाय मानव जाति के

कल्याण के लिये खर्च करो। मैंने आवाज उठाई है कि ऐ भोले इन्सान! तू भूल में है। उस मालिक से यदि मिलना है तो अपने अन्तर में देह, मन और आत्मा से परे जाकर शब्द में लय होकर देख। वह है असली मालिक ! तू मन के रूपों में आकर समय और धन नष्ट कर रहा है। यही गुरु ज्ञान है। इस ज्ञान को फैलाना गुरु सेवा है। सबसे अधिक गुरु सेवा यह है कि मनुष्य मनुष्य की सेवा करे मगर हर एक मनुष्य संसार के सब लोगों को सेवा करने की शक्ति नहीं रखता तो संत सतगुरु की हैसियत से मेरा यह कहना है कि ऐ मानव ! दुनिया में रहते हुये कुदरत ने जिनको तेरे साथ लगाया हुआ है - पुत्र, स्त्री, रिश्तेदार, कुटुम्ब परिवार, पड़ौसी और मां-बाप, भाई-बहन आदि इनकी निष्काम सेवा कर। मंदिर, गिर्जाघर, गुरुद्वारे बना दिये तो क्या बना। यह सब भूल भ्रम और अज्ञान है। मनुष्य-मनुष्य की सेवा करे। प्यासे को पानी पिलाये, भूखे को रोटी दे। निर्धन को योग्य लड़के को

शिक्षा दिला दे। किसी रोगी की सेवा करे। यह है परोपकार का काम। यदि भवसागर से पार जाना है तो फिर वही कबीर का शब्द आता है-

शब्द शब्द बहु अन्तरा, सार शब्द चित देय।
जा शब्दे साहब मिलें, सोई शब्द गह लेय॥

यह निरख परख की दुनिया है। यह सतगुरु वह है जो सच्ची बात बताता, सच्चा ज्ञान देता, सच्चा रहस्य बताता है। आज कल क्या आडम्बर है? मान लो मैंने मंदिर बनाया तो यह प्रोपोगंडा कराऊँगा जो मंदिर की सेवा करेगा वह तर जायेगा। फिर लोग ईटें अपने सिरों पर ढ़ोयेंगे, टोकरी उठायेंगे, यह काल का चक्र है। इस समय प्रोजैक्ट बनाने में सहायता देना, कुएँ बनवाना, सड़क बनाना अथवा इस प्रकार के दूसरे कार्य करना जिन से जीवों का सांसरिक भला हो, कल्याणकारी है। मानवता मंदिर बनवा देने से तुमको मालिक नहीं मिलेगा।

उपरोक्त कथन से मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं कि दान न दो। दो और अवश्य दो मगर सोच समझ कर दो। मैं सच्चा रहस्य बताना चाहता हूँ। इसके लिये भी स्थान की आवश्यकता है। धर्मशालाओं की भी आवश्यकता है। गुरुद्वारों की भी आवश्यकता है। यह शुभ कर्म हैं मगर इन मन्दिर, गुरुद्वारों तथा अन्य संस्थाओं की सम्पति किसी विशेष गुरु की या संस्था की सम्पत्ति होनी चाहिये। मेरे वश में हो तो कुल डेरे मन्दिर आदि संस्थाओं की सम्पति पब्लिक के अधिकार में कर दूँ। किसी एक व्यक्ति का हक नहीं कि वह कब्जा करे।

मुझे सन 1937 ई. में सत्संग के अवसर पर महर्षि जी महाराज ने कहा था फकीर। समय बदल जायेगा। धर्म सम्प्रदाय समाप्त हो जायेगें। तुम शिक्षा बदल जाना मगर यह नहीं कहा कि शिक्षा को कैसे और किस ढंग पर बदलूँ और क्या करूँ।

मैंने अपना जीवन सुरत शब्द के अभ्यास में व्यतीत किया है। जिस परिणाम पर पहुँचा हूँ वह यह है कि रचना होती रहती है और उसी तत्व में समा जाती है। जब यह ज्ञान हो जाये तो फिर किसी प्रकार के जप-तप कर्म धर्म की आवश्यकता नहीं रहती। फिर जब तक शरीर है मानव जाति के कल्याण का काम करता रहे मगर यह ज्ञान वाचक न हो किन्तु अपने अनुभव में आ जाये अन्यथा हानि होगी। मैंने केवल आध्यात्मिक शिक्षा ही नहीं दी किन्तु स्वार्थ और सांसारिक शिक्षा को भी साथ साथ रखा है। मैं व्यास वाले बाबा सावन सिंह को भी सतगुरु मानता हूँ। मैं उनको अपनी आध्यात्मिक बातें लिखा करता था। एक बार मुझे उन्होंने पत्र में लिखा था कि फकीर जीवन एक घोड़े के समान है। यदि एक ओर की रकाव पर बोझ अधिक दिया तो गिरने का अंदेशा है। दोनों और बराबर बोझ से सवारी ठीक रहेगी। जिन्होंने केवल आध्यात्म की ओर पग बढ़ाया और दुनिया से बेसुध रहे तो वह

भी बरबाद हुये। और दुनिया चाहने वाले नर पशु, त्रिया पशु, वेद पशु हो गये।

आज व्यास पूजा पर आप लोगों ने मुझ पर फूल चढ़ाये। यह आपकी श्रद्धा विश्वास है। मगर मैं इसके बदले में आपको क्या दूँ मैं भी ऐसा ही किया करता था। दाता दयाल के लिये सिंहासन बनवाया, चांदी का हुक्का, जरी की पोशाक और आरती के लिए दरबार में उपस्थित हुआ, आरती की मगर दाता दयाल ने फटकार लगाई और लिखा:

चेत चेत चेत अभी चेत मेरे भाई।
राह से कुराह भया भूला भरमाना।
कहाँ बसे कहाँ नसे ठौर न ठिकाना॥

संगी नहीं साथी नहीं कोई न सहाई।

ताक में हैं चोर डाकू कोई न सहाई॥

सोया सो सोया पूँजी खोय रोया।
फल पाया आप गुरा जैसा बीज बोया॥

यह तो नहीं तेरा देश देश है बेगाना।
यहाँ सब बेगाने बसें, कोई न जगाना॥

गुरु ने उपदेश दिया और मुझे चिताया।
संत पंथ धार हिये, कटे मोह माया॥

लूट पड़ी लूट से बचाले धन अपना।
सह न काल करम चोट सोधले मन अपना॥

राधास्वामी संत रुप तेरे हैं सहाई।
उनकी ओर ध्यान लगा ले चरन सरनाई॥

मेरे जीवन की खोज का यह परिणाम है कि हमारे दुखों का सबसे बड़ा कारण अज्ञान है। इससे भी अधिक घर के दुखड़े हैं। परमार्थ सुगम है मगर स्वार्थ कठिन है। मैं इतना ऊँचा चला गया मगर फिर भी दुख-सुख आते हैं। मैं चिन्ता नहीं करता। वह उपाय करता हूँ जिससे घर की शान्ति बनी रहे। वातावरण ठीक रहे। इस शान्ति को प्राप्त करने के लिए भक्तजन रोया करते हैं। प्रार्थना किया करते हैं। मैं भी रोया करता था रोते-रोते बेहोश हो जाता था। दाता दयाल ने दया कर दी। वह दया क्या थी? यही कि मुझे सच्चा भेद, सच्चा ज्ञान दे दिया। क्या भेद दिया? यही कि ऐ फकीर ! जब तक दुनिया में हो दुनिया के नियमों का पालन करो। जीओ और जीने दो। सेवा करो और सेवा लो। दूसरे यह कि मैं मन के रुपों में ग्रसित था। यदि आज समाधि में कृष्ण प्रकट हुये तो कल को राम आये। फिर दातादयाल आ गये। मैं इन अन्तरीय रूपों में फँसा था। दातादयाल ने दया की

मुझे गुरु पदवी दे दी ताकि मैं समझ सकूँ कि यह समस्त रुप, रंग, रेखायें जो मेरे अन्तर प्रकट होती है यह माया हैं। मेरे ही मन के भाव का विचार है। अन्तिम पद के लिये कहा करते थे कि वहां चिराग गुल पगड़ी गायब! फिर ऐसी अवस्था वाला आदमी ऐसे रहता है जैसे गुरु नानक देव कह गये:-

जैसे जल में कँवल निरालम्ब मुरगावी निशानये।
सुरत शब्द भव सागर तरिये, नानक नाम बखानिये॥

यह अवस्था उस समय प्राप्त होगी जब नाम मिलेगा। चूंकि हर एक की प्रकृति भिन्न भिन्न है, कोई किसी बन्धन में है कोई किसी में। किसी को ईश्वर भक्ति का बन्धन है, किसी को माया की भक्ति का बंधन है, किसी को पुत्रों का बन्धन है। सम्पूर्ण संसार उन्हीं बन्धनों से बंधा हुआ है। गुरु चूंकि भेद ज्ञाता होता है वह जीवन के यह बन्धन तुड़वा देता है। मैं ईश्वर के बन्धन में था। कभी राम कभी कृष्ण का ध्यान करता था। आनन्द लेता

था। मेरे इस बन्धन को तोड़ने को दातादयाल जी ने मुझे गुरु पदवी दी, जिससे मेरे कुल बन्धन टूट गये। अब दातादयाल से यही प्रार्थना है कि जो पहिले था वही हो जाऊँ। पहिले न मन था न सुरत थी। कुछ न था। केवल तत्व था। उसमें गति हुई। शब्द उत्पन्न हुआ। फिर सुरत में आकर जीव बन गई। मैं आज 62 वर्ष की उम्र का अनुभव गुरु ऋण से उत्तीर्ण होने के लिये किस को भेंट करूँ। जैसा पहिले लिखा है उन सत्संगियों को भेंट करता हूँ जिन्होनें अपने अनुभवों से मेरे भ्रम दूर किये।

मैं अपने अन्तर लय हो जाऊँ यही अन्तिम पद है। एक फकीर ने लिखा है:-

तू मवाश असल कमाल ई असत वेश।
तू दर्द गुम शो बिसालई असल वेश॥

तेरे तीन पने का समाप्त हो जाना ही कमाल (पूर्णता) है। तू अपने आप को उस स्वरूप में लय करदे। यही असली विलास (साक्षात्कार) है और बस ! यही व्यास जी का विचार है। गरुड़ पुराण में भी यही है और यही शब्द विदेह है।

शब्द शब्द बहु अन्तरा, सार शब्द चित देय।
आ शब्दे साहब मिलें, ताहि शब्द चित देय॥

वह साहब जो शब्द से मिलता है वह कौन है? वह है अकह, अपार, अगाध, अनामी। वही अकाल पुरुष है। परम तत्व आधार है जिसको हिन्दू शास्त्र कहते हैं कि सत को असत ने ढक रखा था। रचना में आकर लोग भ्रम में आ गये। अब किसी संत की कृपा से उसका सत्संग सुनने से, अमल करने से और उस अकाल पुरुष की दया से असलियत को समझ कर फिर अपने घर जा सकोगे।

॥ राधा स्वामी ॥

बेहद्दी या अपार के परे

हद (पार) और बेहद (अपार)

कोई कहता है मौज ने मुझको बनाया। कोई कह देता है मौज आप ही विभिन्न रूपों में व्यक्त हुई है। दोनों ही ठीक है। यदि सच पूछो तो दोनों ही गलत है। किस बात को सच कहूँ। किस बात को झूठ कहूँ। सच और झूठ दोनों बुद्धि के अन्तरगत हैं और आपेक्षित शब्द हैं।

छोटी उम्र से जब से होश आया, उस मालिक की मौज़ की या अपने-आप की ही खोज में लगा। जिस-जिस प्रकार के संस्कार इस रचना के जीवन पर पड़ते हैं, वैसा ही सोचने-समझने

के लिए विवश हैं। हिन्दू जाति में जन्म लेने के कारण रामायण व अन्य धार्मिक ग्रन्थों के संस्कारों से मालिक के निज स्वरुप को या अपने-आप को साकार रूप में माना। कभी राम को, कभी कृष्ण को साकार रूप में माना क्योंकि इनको अवतार मानते थे। चूँकि वह साकार रूप में अवतार लेता है, अंतःकरण चाहता था कि उसको साकार रूप में देखूँ।

मेरी खोज के चरम सीमा के भाव ने एक दृश्य दिखाया जिसने विश्वास करवा दिया कि वह आधार, मालिक या ब्रह्म या कोई और नाम रख लो वह दातादयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी के रूप में आया हुआ है। मैं महर्षि जी के चरणों में गया। वहाँ उस आदि अवस्था को या मालिक को मिलने, साक्षात्कार करने के लिए यह नाम का साधन मुझको बताया। उस नाम को जो आधार था उसको तो मैं पकड़ नहीं सकता था। इसको पकड़ने के लिए सुमिरन, ध्यान, सच्चाई से जीवन व्यतीत

करना, हक-हलाल की कमाई खाना, दूसरे के ऐबों को न देखना आदि आदेश मिले। साथ ही मालिक तक पहुँचने के रास्ते की श्रेणीयों का, जिनको संत मत में सहस दल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न महासुन्न, भंवर गुफा, सत, अलख अगम कहते हैं, संस्कार दिया गया।

जीवन इसी धुनि में बीत गया। प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा। आज मैं कहाँ पहुँचा हूँ ? अपना अनुभव कहता हूँ। दूसरे महापुरुषों ने भी जो इस रास्ते पर चले हैं अपने-अपने शब्दों में अपना अपना अनुभव वर्णन किया है। कबीर का कथन है-

हद में रहे सो मानवा, बेहद रहे तो साध।
हद बेहद दोनों तजे, ता का मत अगाध॥

अब मैं सोचता हूँ कि हद क्या है और बेहद्दी क्या और बेहद्दी के परे क्या है। मुझे दातादयाल (महर्षि शिबब्रतलाल जी) ने फकीर बनने का आदेश दिया था-

तू फकीर बन तू फकीर बन, तू फकीर बन भाई।
मैं भी तरूँ फकीर चरन लग, ऐ फकीर सुखदाई॥

हमारा स्वरुप, जो हम हैं, वह इस शरीर में आकर व्यक्त या प्रकट होता है, इसलिए मेरी समझ में यह शरीर ही 'हद' है। उस स्वरुप की अभिव्यक्ति 'हद' में आकर ही होती है। जैसे बिजली का करंट किसी बल्ब या मशीन आदि से प्रकट होता है। संत कबीर ने भी कहा है 'ब्रह्म रहे काया के ओले, बिन काया ब्रह्म क्या बोले'। जो व्यक्ति अपने शारीरिक भान को छोड़ कर या भूल कर इस शरीर से परे हो जाता है और मानसिक जीवन, सूक्ष्म प्रकृति या संकल्प के जगत में चला जाता है वह **औलिया या साध** है। औलिया साधारणतया उसे कहते हैं जिसे गुप्त

ज्ञान होता है। यदि वह उस अवस्था में ठहर कर सूक्ष्म प्रकृति अर्थात् संकल्प के जगत का ज्ञान या अनुभव जो उसको इस औलियापने अर्थात् शारीरिक भान के त्यागने के बाद प्राप्त हुआ है उसके आधार पर वह लोगों को उपदेश करता है तो उसका नाम पीर है अर्थात् पीर वह है जो दूसरों के दुखों को दूर करने वाला है, सच्ची राय देता है और जो मनुष्य इस मानसिक जगत के बाहर निकल जाता है जहाँ किसी प्रकार की रचना नहीं है अर्थात् मानसिक और शारीरिक, वह फकीर (संत) है। राधास्वामी दयाल ने भी फकीर और संत को एक ही श्रेणी में माना है। जब कोई फकीर हो जाता है अर्थात् देह और मन को छोड़ देता है वहाँ उसकी क्या दशा होती है? मैं केवल अपना अनुभव कहता हूँ कि देह और मन के परे शब्द और प्रकाश है। कुछ लोग पूछेंगे कि क्या मन से परे भी कुछ है। उत्तर है कि 'हाँ' है।

देखो! इस सृष्टि की उत्पत्ति कहाँ से हुई? (असत) से सत नहीं आता। वेदान्ती कहते हैं कि यह संसार है नहीं, केवल भासता है। मैं आज कल वशिष्ट कुंड (कुल्लु) में हूँ। यहाँ पर्वत हैं। गर्म पानी के स्त्रोत हैं। यदि एक वेदान्ती कहे कि यह पर्वत नहीं है, गर्म पानी का स्त्रोत नहीं है केवल भासता है तो बुद्धिमान् सोचें कि इसका ऐसा कहना या मानना ठीक है या नहीं। यह ठीक है गर्म स्त्रोत के किनारे बैठा हुआ वेदान्ती स्त्रोत का ध्यान न करे तो उसके मन के अन्तर भासेगा नहीं। मगर यदि उसको इसी विचार में बैठे हुये को स्त्रोत में फेंक दिया जाये तो क्या उसको गर्मी न लगेगी। इस प्रकार से मैं समझता हूँ कि संसार है। यदि कोई ऐसा संसार का आदमी है जो है नहीं और भासता है तो वह संसार उसका अपना है अर्थात् जितने भाव-विचार रूप रंग रेखायें अन्तर में आदमी के पैदा होती हैं जो वास्तव में हैं नहीं मगर आदमी को अपने अन्तर भासते हैं। वह मनुष्य का अपना

संसार है, यद्यपि मैं उनके होने को भी सत्य मानता हूँ, क्योंकि यह वही विचार वही रुह है जो इस बाह्य जगत के प्रतिबिम्ब है। यह प्रतिबिम्ब जो है वही माया है, इसलिए जब से मुझको यह ज्ञान हुआ कि मैं किसी अन्तर नहीं आता और लोगों के अन्तर मेरा रूप प्रगट होता है तो मैं विवश हो गया यह मानने के लिए कि यह सब संसार है, जो कुछ हमारे अन्तर भासता है यह बाहरी जगत उस भगवान की सृष्टि का प्रतिबिम्ब है। फिर आगे क्या है? आगे वह है जो असल भगवान है और वह है शब्द और प्रकाश। प्रकाश और शब्द आधार है, सृष्टि का रचियता है और इसकी जो रचना है वह यह समस्त लोक-लोकान्तर है। तो संत या फकीर जो है वह इन सबसे ऊँचा रहकर उस तत्त्व में खेलता रहता है जो सर्वस्व का आधार है। संत उसको संत लोक कहते हैं। वहाँ तक पहुँचने के लिए केवल शब्द योग, अनहद मार्ग या उद्गीत है। कबीर की बाणी है-

शब्द भेद-विदेह शब्द

शब्द शब्द बहु अन्तरा, सार भेद चित देय।

जा शब्दे साहब मिलें, सोई शब्द गह लेय॥

शब्द शब्द सब कोई कहे, वह तो शब्द विदेह।

जिभ्या पर आवे नहीं, निरख परख कर लेय॥

शब्द भेद तब जानिये, रहे शब्द के माहिं।

शब्द से शब्द प्रकट भया, दूसरा देखे नाहिं॥

सुन्न मण्डल में घर किया, बाजे शब्द रसाल।

रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल॥

शब्द माहिं सुरत राखिये, तब पहुँचे दरबार।

कहे कबीर तहाँ देखिये, बैठा पुरुष हमार॥

यह ठीक है कि मैंने अपना अनुभव वर्णन करने का प्रयत्न किया है मगर हो सकता है मेरा अनुभव गलत हो यद्यपि मैं नहीं

समझता कि वह गलत है। क्यों? क्योंकि जहाँ मैं इस शब्द का साधन करते हुये पहुँचा, वहाँ की अवस्था का जो अनुभव होता है वहाँ मेरे अपने 'हैपने' में 'हैपने' के साथ कोई और बोध नहीं होता। मैं इसलिए कहता हूँ कि मैं ठीक हूँ। कबीर साहब कह गये-

शब्द शब्द सब कोई कहे, वह तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवे नहीं, निरख परख कर लेय॥

विदेह शब्द क्या है ? कबीर का क्या भाव है मैं नहीं जानता। मैं इस मार्ग पर जीवन भर चला हूँ। सब स्थान तय करता आया हूँ। अब वह स्थान छूट गये यद्यपि उन स्थानों का भान जाग्रत अवस्था, स्वप्नावस्था, तुरिया, तुरियातीत में अभी तक आता रहता है। मुझे खोज थी उस मालिक की जो आधार है। इसलिए शब्द को सुनता चला आ रहा हूँ। अब इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वहाँ केवल एक चेत (हिस) रहता है। कोई

उस चेत को चेतनपना कह देता है कोई शब्द कह देता है। वहाँ जाकर भवसागर नहीं रहता। भव कहते हैं होने को और सागर समुद्र को। अपने होने या हैपने का जो विस्तार है वह समाप्त हो जाता है। केवल अपना हैपना बना रहता है। वहाँ न शब्द है न प्रकाश है यह मेरा निजी अनुभव है और मैं उस को कहता हूँ बेह द्द से परे (अपार से परे)।

अब इस सृष्टि में अनेक प्रकार की धार्मिक व पंथिक विचारधारायें हैं। मुझे याद है कि एक बार अपने गुरु स्वरूप गोपी लाल कृषक के मकान पर था। मैंने शब्द योग के विषय में कुछ कहा था। उन्होंने ऐतराज किया। चूँकि वह अन्तरी शब्द को अन्तरी साधन नहीं मानते किन्तु वाणी को सार शब्द समझते हैं। मुझे कई डाक्टर मिले। वह शब्द को रक्त की गति बताते हैं और कहते हैं कि दिमाग के अन्तर शब्द या आवाज का उत्पन्न होते रहना खराबी दिमाग है।

परसों मैं कुल्लू में था। एक महात्मा नरसिंह दास कबीर पंथी ने मुझे कहा कि यहाँ आर्य समाज के विद्वान लोग हैं। यह शब्द के विषय में कई प्रश्न करते हैं। उनको शब्द की महिमा बताने के लिया क्या कहा जाये? मैं अपने निज अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि जब तक किसी जीव को इस स्थूल रुप या स्थूल प्रकृति या शारीरिक जीवन के नाशवान होने का पूरा विश्वास नहीं आता, शब्द तो दूर रहा, वह औलियापने (सिद्धपने) की अवस्था को भी नहीं समझ सकता। जब तक किसी को सूक्ष्म प्रकृति मानसिक रचना या मानसिक ज्ञान के अस्थायी होने का विश्वास नहीं आता वह भी शब्द को नहीं पकड़ सकता। पकड़ना क्या समझ भी नहीं सकता। यह जितने बड़े-बड़े औलिया (सिद्ध पुरुष) हुए हैं, शब्द योग के बिना भी औलियापने की अवस्था उनमें आ सकती थी। यों भी देखो ! कई महात्मा शब्द योगी नहीं होते। इसलिए यह शब्द योग

मेरे अनुभव में केवल उन लोगों के लिए है जिनको यह निश्चय हो जाता है कि यह स्थूल या सूक्ष्म प्रकृति नाशवान है और परिवर्तनशील है और वह किसी ऐसी अवस्था में जाना चाहते हैं जहाँ उनको स्थायी जीवन मिले और इस कलियुग में यह विश्वास कराने के लिए यह सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति नाशवान है और हमारा स्वरूप इनसे पृथक है, सत्संग का क्रम चालू किया। अनेक प्रकार के शब्द तथा वाणियाँ कह कर जीवों को इस सृष्टि का नाशवान और दुख-सुख का देने वाला सिद्ध किया। जब किसी को सत्संग द्वारा विश्वास हो गया कि बात ऐसी ही है तब उसको शब्द योग का साधन बताया। इसलिए संत या फकीर बेहद से परे रहते हैं। वाद-विवाद नहीं करते।

यह कबीर का शब्द है। मैंने यह सिद्ध कर दिया कि जो यह विदेह शब्द है या सार शब्द है उसके सुनने से भवसागर

समाप्त हो जाता है और जो हमारे अन्तर में असल तत्व है वह अमर-अजर हो जाता है आगे कबीर कहते हैं-

शब्द भया तब जानिये, रहे शब्द के माहिं।
शब्द से शब्द प्रगट भया, दूसरा देखे नाहिं॥

यहाँ कबीर ने उस शब्द को वर्णन किया है जिससे विदेह गति आती है। शब्द तो अनेक हैं। दुनिया वाले जो हम मुँह से बात निकालते हैं उसको भी शब्द कहते हैं इसलिए जो शब्द विदेह है केवल उसके सुनने से उस मालिक की पहिचान या उसका मिलाप होता है। यहाँ वशिष्ट कुण्ड में जो स्रोत का जल हर समय चलता रहता है इससे भी आवाज़ निकलती है। वायु चलती है उसमें भी शब्द है, रात को सुनसान स्थान में बैठ जाओ, आकाश में शब्द आता रहता है जहाँ भी गति है वहाँ शब्द है। हमारे शरीर की नस नाड़ियों में हर समय आवाज़ होती है। हृदय की धड़कन में आवाज़ है। संतों ने इन बाह्य शब्दों को छुड़वाकर

अन्तरी शब्दों का वर्णन किया है जैसे पाँच नाम, पाँच शब्द। यह पाँच नाम या पाँच शब्द हैं क्या ? पहिला शब्द है-

सहस्त्रदल कंवल का घंटा शंख। यह सूक्ष्म अर्थात् मन के विचारों के एकाग्र होने से अन्तर में हम सुनते हैं क्योंकि इन विचारों में वासना होती है और संकल्प होते हैं। इसलिए घंटा और शंख का शब्द है। यह सार शब्द नहीं है। जिससे उस मालिक से साक्षात्कार हो अथवा विदेह गति आये। त्रिकुटी में मृदंग, ओ३म्, बमबम या बादल की गर्ज आदि संत मार्ग में सुनने की आज्ञा है। जिस तरह समुद्र से पानी की भाप निकलकर आकाश पर बादल बनकर गर्जते हैं और रगड़ से बिजली उत्पन्न होती है, इसी तरह हमारी वासनायें यदि स्थूल प्रकृति की नहीं है अर्थात् स्थूल पदार्थों की इच्छायें नहीं है, केवल परमार्थिक है तो वह मन के वासना रूपी सागर से उठकर दिमाग में त्रिकुटी के स्थान पर जो शब्द पैदा करते हैं वह ओ३म्, बम-बम आदि

का रूप ग्रहण करते हैं, इस शब्द के सुनने से भी चूँकि यह शब्द विदेह नहीं है, इन शब्दों से भी मनुष्य की सूरत अपने आदि घर नहीं जा सकती। यह मैं क्यों कहता हूँ, मैंने यह शब्द सुने हैं। जब इन शब्दों को सुनता था तो भवसागर के दुख सुखों से बच नहीं सका। हाँ इनके सुनने से घंटा शंख के शब्द सुनने से मेरी दुनिया की आवश्यकतायें, ऋद्धि -सिद्धि और शक्ति प्राप्त होने के कारण पूरी होती थीं। त्रिकुटी के शब्द सुनने से ज्ञान किसी वस्तु का जानना, प्राप्त होता रहता था। इसीलिए त्रिकुटी पद को उरफान का पद कहते हैं।

सहस्त्रदल कंवल को ऋद्धि -सिद्धि और शक्ति देने वाला मानते ही नहीं किन्तु है अर्थात् वहाँ के अभ्यास से ऋद्धि-सिद्धि होती है। इसी प्रकार सुन्न में जो शब्द होता हो उससे मानसिक शान्ति मिलती है। वहाँ जो शब्द होता है उसे सारंगी का शब्द कहते हैं। अन्तर के शब्द को वर्णात्मक बाहरी शब्द से

समानता देते हुये उसको रारंग-सारंग या सारंगी की आवाज़ कह दिया गया है क्योंकि जब जीव को उस मालिक के मिलने या भवसागर से हमेशा के लिए निकलने या इस नाशवान जीवन से निकलने की इच्छा होती है। उस इच्छा के कारण मन की सम्पूर्ण धारें तन जाती हैं। उनके तन जाने के कारण जब सुरत वहाँ ठहरती है या गति करती है तो यह आवाज पैदा होती है। यह मानसिक जगत है। मैं इससे निकल नहीं सकता था। इस मानसिक रचना से निकालने के लिए दातादयाल ने यह गुरु पदवी मुझे दी थी। जब यह निश्चय हुआ कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता और लोगों के अन्तर मेरा रूप प्रगट होकर उनके सब काम कर जाता है और मुझे पता तक नहीं होता कि कौन प्रगट होकर इनके काम कर गया तो मैंने समझा कि यह सब मानसिक रचना है। अब मेरे लिये यह सहस्त्रदल कंबल, त्रिकुटी और सुन्न के घंटा शंख मृदंग और सारंगी आदि के शब्द सुनना कठिन हो

गया क्योंकि यह शब्द तो तब होते थे जब मैं इस मानसिक जगत को सत्य मानता था। इसलिए यदि किसी वेदान्ती को जो सच्चा वेदान्ती है इस विदेह शब्द की शिक्षा देनी हो तो उसको इन प्रारम्भिक शब्दों के सुनने की आवश्यकता नहीं। यही कारण है कि यह वेदान्ती इस शब्द योग के विषय पर प्रश्नोत्तर करते रहते हैं। यही कबीर साहब कहते हैं-

सुन्न मंडल में घर किया, बाजे शब्द रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल॥

इस सूक्ष्म मण्डल में यह ज्ञान हो जाता है कि यह सूक्ष्म प्रकृति है। आत्मा जो स्वयं प्रकाश रुप हैं, ब्रह्म रुप है, यह प्रकाशमय हो जाती है। है तो वह पहिले भी प्रकाशमय, मगर सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति के खोल के कारण अपने प्रकाशपने का भान नहीं कर सकती। प्रकाश को सब मानते हैं। अब तो वर्तमान साईंस इस संतमत को सच्चा सिद्ध कर रही है। एक

मास्टर कृपालसिंह एम. ए. है, जो लैक्चरार है। उन्होंने बताया कि अमरीका में कोई लामा (तिब्बत वासी) रहे हैं वह एलोक्ट्रो माइक्रो फोन से यह दिखा देते थे कि किस तरह एक्स-रेज़ में सब शरीर दिखाई देता है, उसमें मनुष्य का कुल शरीर प्रकाशवान मालूम होता है। उसके बीच में एक एटम है जिसके चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश देखा जा सकता है। मनुष्य की जो आत्मा है यह प्रकाश है। जो आदमी इस आत्म अवस्था में चला जाता है वह स्वयं महसूस करता है कि उसका सब कुछ प्रकाश ही प्रकाश है। इसलिए संतों का मार्ग क्रियात्मक है। वैज्ञानिकों ने बाहरी वस्तुओं का अध्ययन किया और संतों ने अपने ही आप का या अपने ही शरीर का अध्ययन किया है। आत्मा इस शरीर में है और वह प्रकाश रूप है मगर यह गति हद में है। इसमें अभी बेहद्दी नहीं है। आत्म पद तक पहुँचने वाले पीर कहलाते हैं।

शब्द भेद-विदेह और (लगातार)

धर्म और पंथों ने मुझ पर बड़ा प्रभाव किया हुआ था। राम-राम या दूसरे नाम जपा करता था। यह ख्याल मिला हुआ था कि राम-राम या ओ३म् के जपने से वह मालिक मिल जायेगा। सौभाग्य या दुर्भाग्य संतों के मार्ग में ले आया। उन्होंने सब वर्णात्मिक नामों का खंडन कर दिया और अन्तरीय नामों से ही मालिक के मिलने का विश्वास दिलाया। जैसे कबीर की वाणी है-

पंडित वाद वेद से झूठा॥ टेक॥
राम-राम के कहे जगत तर जाता खंड कहे मुँह मीठा॥
पावक कहे पाँव जो जरई, जल कहे त्रिषा बुझाई।

भोजन कहे भूक जो भागे, तब दुनिया तरि जाई॥
नर के पास सुआ आइ बोले, गुरु प्रताप न जाना।
जो कभी उड़ जात जंगल में, बहुर सुरत नहिं आना॥
बिन देखे बिन दर्श पर्श बिन, नाम लिये का होई।
धन के कहे धनी जो होई, निर्धन रहे न कोई॥
सांची हेत विषय माया से, सतगुरु शब्द की हाँसी।
कहे कबीर गुरु के बेमुख, बाँध यमपुर जाँही॥

देखो! कबीर कहते हैं कि क्या खाँड के नाम लेने से मुँह मीठा होता है, आग का नाम लेने से पाँव जल जाते हैं? इसी प्रकार केवल मुँह से राम-नाम कहने मात्र से तुम को मालिक नहीं मिलेगा। इसी प्रकार के विचारों का वर्णन रामायण में है कि राम नाम लेने से जीव तर जाते हैं। मैंने करोड़ों बार राम नाम का जप किया लेकिन मुझे मालिक नहीं मिला मगर मैं मालिक से मिलना चाहता था। विभिन्न विचार धाराओं के प्रभाव पड़े थे तो

मैंने सन्मार्ग पर चलने पर प्रण किया था कि इस मार्ग पर चलने से मुझे अनुभव होगा वह बता जाऊँगा।

गुरु के पास सूआ आइ बोले, गुरु प्रताप न जाना।
जो कभी उड़ जात जंगल में , बहुरि सुरत नहीं आना॥

आदमी के पास तोता आकर बोलता है। गुरु के प्रताप को उसने जाना नहीं। जब वह जंगल में उड़ जायेगा, फिर वह तुम्हारे पास नहीं आयेगा। प्रत्येक आदमी के अन्तर शब्द होते हैं। मेरे अन्तर शब्द होते थे घंटा, शंख, मृदंग, रारंग, सारंग लेकिन अब वह हर समय मेरे अन्तर नहीं आते, क्योंकि गुरु का ज्ञान मिल गया। क्या ज्ञान मिला? यह कि यह शब्द प्राकृतिक थे। यह यह ज्ञान न होता तो इन शब्दों के सुनने के लिये रोता रहता। अब मैं इन शब्दों के अन्तर न आने से घबराता नहीं। आगे की कड़ी में कबीर का कथन है-

बिन देखे बिन शर्त पर्श बिन, नाम लिये का होई।
धन के कहे धनी जो होई, निर्धन रहे न कोई॥

कहते हैं कि जिस तरह धन का नाम जपने से आदमी धनी नहीं होता, इसी तरह मनुष्य को जब तक मालिक नहीं मिलता, उसके दर्शन नहीं होते, शान्ति नहीं मिलती।

सांची हेत विषय माया से, सतगुरु शब्द की हाँसी।
कहे कबीर गुरु के बेमुख, बाँधे यमपुर जाँही॥

वह गुरु का शब्द क्या है? मनुष्य की सुरत को विदेह शब्द में पहुँचाना है या हद से पार ले जाना है।

मैंने सत्संग शुरु किया था कि-

हद में रहे सो मानवा, बेहद रहे सो साध।
हद बेहद दोनों तजे, तिस का मत अगाध॥

बेहद्दी कब आती है? मुझे नहीं मालूम कि कबीर या संतों का क्या भाव है? मेरा अपना जो अनुभव है वह बताता हूँ। दाता दयाल ने दया कर दी कि गुरु पदवी देकर इस रहस्य को समझा दिया। क्या समझा? कल एक चट्टान पर बैठा हुआ था मास्टर मोहन लाल से बात हो रही थी। आकाश पर दृष्टि गई बादलों में दातादयाल का रूप मेरे सामने प्रगट था। वहाँ से वह मुझ पर फूलों की वर्षा कर रहे थे। इस प्रकार के दृश्य हर एक सम्प्रदाय वाले विभिन्न रूपों में बताते रहते हैं। रामायण में भी लिखा है कि जब रावण मारा गया, देवता इकट्ठे हुये। आकाश पर बाजे बजने लगे। राम पर फूल बरसाये गए। मैं कभी ऐसी बातों को सत्य मानता था लेकिन आज मेरे साथ यह होता है अर्थात् मेरा रूप जाग्रत में, स्वप्न में, समाधि में लोगों को दर्शन देता है लेकिन मैं नहीं होता और न मुझ को इन घटनाओं का पता होता है तो मैं कैसे मानूँ कि वह जो दातादयाल का रूप

बादलों में बैठा हुआ मुझ पर फूलों की वर्षा करता था, वह दातादयाल ही थे। फिर वह क्या था? वह थी माया।

यह संसार माया है। जब तक जीव को किसी रूप रंग से बाहर में या अन्तर में सम्बन्ध है और उनको वह सत्य मानता है तब तक यमपुर से या जन्ममरण से छुटकारा नहीं मिलता।

मैंने अपने वचनों में एक जगह श्री गोपीलाल कृषक को गुरु रूप कहा है। क्यों? क्योंकि दातादयाल जी ने भी यही कहा था फकीर ! तुमको सतगुरु की प्राप्ति सतसंगियों के रूप द्वारा होगी इन गोपी लाल कृषक का मैंने अपनी ओर से नाम नहीं दिया। इन्होंने मेरे पत्र को पढ़कर उसे ही नाम समझ लिया और मेरे ध्यान में बैठ गये। मेरे रूप ने समाधि में इनकी सहायता की, सुरत चढ़ाई और विभिन्न अन्तरीय स्थानों पर इनको हिदायत दी मगर मुझे कुछ जानकारी नहीं कि वह किस समय मेरे ध्यान में बैठते थे और किस समय उनकी सहायता होती थी और कौन

करता था? इसलिए मैं इस असली और विदेह शब्द को, जिसके सुनने से मनुष्य को उस मालिक के दर्शन होते हैं, मानता हूँ।

विदेह शब्द क्या है? यह है अनुभव ज्ञान। यह मुझे केवल इस ख्याल से मिला कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, सब कुछ मनुष्य का अपना ही श्रद्धा विश्वास है। इस बात को समझकर जब मैं अपने अन्तर जाता हूँ तो जो कुछ मुझ से या मेरे अन्तर से निकलता है भाव, विचार, शब्द और प्रकाश, उसको भूल जाता हूँ अथवा छोड़ जाता हूँ। जो शेष रह गया वह विदेह पुरुष है। विदेह पुरुष अनुभव को कहते हैं। यह शब्द जो सुनते हैं यह भी विदेह नहीं है। चूँकि इस अवस्था तक मुझे मेरे शिष्यों ने पहुँचाया है इसलिए मैं इस संसार में अपने शिष्यों को गुरु रूप मानता हूँ। मैंने अपने अनुभव के आधार पर सिद्ध किया है कि यह घंटा, शंख, मृदंग, बादल की गरज, रारंग-सारंग आदि शब्द वह शब्द नहीं हैं जो मालिक तक पहुँचाते हैं और वही कबीर ने

कहा है कि ओ३म् सोहं यह शब्द वर्णात्मक है। इन शब्दों का खंडन तो कबीर ने पहिले कर दिया, अन्तर के शब्दों का खंडन यहाँ है। मुझे अपने जीवन की खोज का जो परिणाम निकला, उसको सत्य मानने के लिए विवशता है। फिर वह मालिक क्या है?

नहिं निर्गुन नहिं सर्गुन भाई, नहिं सूक्ष्म स्थूलम।
नहिं अक्षर नहिं अविगत भाई, यह सब जग की भूलम॥
जहाँ पुरुष तहाँ कछु नाहीं, कहै कबीर हम जाना।
हमरी सेन लेख जो कोई पावे पद निर्वाना॥

यही बात सनातन धर्म में है कि सत से पहिले सत को असत ने ढक रखा था। यही बात राधास्वामी दयाल जेठ महीने के बारहमासा में कहते हैं-

नहिं खालिक मखलूक न खिलकत।

कारज कारन काज न दिक्कत॥

राम रहीम करीम न केशो।

अल्लाह रसूल खुदा न होते

यह अवस्था है हद के पार की।

मेरा जीवन क्रियात्मक रहा है। मैं हर वस्तु को क्रियात्मक रूप से या अमली पहलू से देखता रहा हूँ। सोचता हूँ कि तूने सब स्थान पार किये। अभ्यास करता हुआ अन्त में उस स्थान या अवस्था में जाकर जहाँ न प्रकाश है न शब्द है, क्या रह जाता है। जो कुछ रह जाता है वह अनिर्वचनीय है। कथन में नहीं आ सकता। संत कबीर ने भी यही कहा है और स्वामी (राधास्वामी दयाल) जी ने भी यही कहा है। हिन्दू शास्त्र भी यही कहते हैं। फिर क्या बन गया? ऐसी बातें या वाणियाँ कहने वालों के मैंने जीवन देखे हैं। वह बीमार हुये और उन पर सांसारिक कष्ट

भी आये। उस समय जो इन महात्माओं के मन की दशा थी उसका तो मुझे पता नहीं मगर प्रत्यक्ष रुप से उनके क्रोध आने की बातें मौजूद हैं। शरीर के लिए रोटी, कपड़ा की आवश्यकता प्रत्यक्ष रुप से मालूम होती है। यह दूसरी बात है कि कुदरत या मौज इनकी व्यवस्था करती रहती है अब मैं सोचता हूँ कि कोई आदमी इस अवस्था को प्राप्त कर गया तो क्या बन गया।

दुनिया को रोचक भयानक या यथार्थ बातें बता कर महात्मा या संत कहला गये। मैं अपने विषय में सोचता हूँ कि मेरा काफी मान सम्मान है। लोग सेवा भी करते हैं। मुझे क्या मिला? मुझे यह मिला कि जो मन के अन्तर किसी वस्तु के जानने समझने और परिवर्तनशील जगत की दशा से बचने की इच्छा थी उसका गुरु मिल गया। दूसरे शब्दों में मोह माया अर्थात् बाह्य और अन्तरीय जगत के साथ जो मेरे मन की आसक्ति थी तथा ईश्वर परमेश्वर व गुरु के साथ, वह समाप्त हो

गई। बस मुझ को यह मिला। अब मैं यह नहीं सोचता कि क्या मैं खुदा हूँ, ईश्वर हूँ या ब्रह्म हूँ अथवा बाप हूँ, बेटा हूँ, गुरु हूँ या चेला हूँ, पापी हूँ, पुण्यात्मा हूँ, किन्तु यह अनुभव रहता है कि यह मौज है। उस मौज के क्षोभ में यह रचना हो रही है। मेरी समझ में संत और असंत, बुरे-भले, अत्याचारी और अत्याचार पीड़ित, राजा और रंक में कोई अन्तर नहीं है। यह भेदभाव मनुष्य के अपने अज्ञान के कारण हैं और हम उनमें फँसे हुए हैं। जिसकी मैं खोज करता था वह तो हर समय तत्त्व रुप में हर जगह मौजूद है और मौजूद था। यही कबीर का कथन है-

बलिहारी जाऊँ मैं सतगुरू के, जिन मेरा भरम किया सब दूर॥

विदेह पुरुष

इस अवस्था में रहने वाले आदमी को विदेह पुरुष कहते हैं और यह विदेह गति तब आयेगी जब उसको विदेह रुपी शब्द की प्राप्ती होगी।

यह जितने बाहरी और अन्तरीय शब्द हैं यह विदेह नहीं है। बाहरी शब्द तो तुम समझते ही हो कि यह विदेह नहीं है। यह किसी अस्तित्व या वस्तु से निकलते हैं। अन्तरीय शब्द घंटा, शंख, मृदंग, रारंग, सारंग आदि यहाँ तक कि बीन तक भी यह सब स्थूल, सूक्ष्म और कारण प्रकृति या हमारे चेतन अवस्था के कारण पैदा होते हैं। चेतन से मेरा अभिप्राय प्रकृति से परे जो अस्तित्व है उससे है। अफसोस शब्द नहीं मिलते। अतः विदेह

शब्द है अनुभव। राधास्वामी दयाल की वाणी है जो शब्द योग की मुख्यता पर जोर देते हैं। कहते हैं-

सुरत शब्द दोऊ अनुभव रुपा।
तू तो पड़ा भरम के कूपा॥

इन आन्तरिक शब्दों के सुनने से वह लाभ होता है जिनका वर्णन मैंने पहिले किया है। शारीरिक, मानसिक, आत्मिक आनन्द, सिद्ध शक्ति। जब तक मनुष्य इन श्रेणियों को पार नहीं करता क्रियात्मक रुप से अपने जीवन के दृष्टिकोण से इस ज्ञान के अनुभव को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए संत मार्ग में साधारण तथा जनसाधारण को साधन और अमल, अन्तरीय साधन आदि पर जोर दिया। जब मनुष्य अधिकारी हो जाता है तब उसको संत या सतगुरु उस की ओर संकेत करते हैं। जो कुछ मैंने कहा उसको कबीर ने इन शब्दों में वर्णन किया-

माला फेरुँ न हरि भजूँ, मुख से कहूँ न राम।

मेरा राम मुझ को जपे, तब पाऊँ विश्राम॥

विश्राम का अर्थ शान्ति है, सहज समाधि है। जब अनुभव की यह अवस्था प्राप्त हो जाती है फिर मनुष्य की सुरत बाह्य गुरु पंथ आदि से मुक्त हो जाती है। इसलिए संत कबीर ने कहा है-

गुरु माथे से ऊतरे, शब्द विहूना होय।
ताको काल घसीटि है, रोक न सके कोय॥

यह प्रारम्भिक श्रेणी है। अन्तिम अवस्था में जाकर जब अनुभव हो जाता है और वह अनुभव परपिक्व हो जाता है उस समय कबीर का कथन है-

गुरु माथे से ऊतरा, सिर से टली बलाय।
जैसा था तैसा भया, कहे कबीर समझाय॥

यह वह अवस्था है जो एक छोटे बच्चे की जिसकी आयु छः मास की होती है। क्या वह राम नाम जपता है? क्या किसी गुरु को मानता है? क्या उसे अपनी कोई चिन्ता होती है? उसकी चिन्ता मौज करती है। इसी प्रकार जो इस अन्तिम विदेह गति में चले जाते हैं और यदि वह सचमुच विदेह है तो कुदरत उनकी संभाल करती है।

विदेह गति की अवस्था व सार शब्द

सुबह को ऐसी अवस्था दिमाग पर छा गई जिस अवस्था में पहिले जो कुछ जीवन में किया - प्रेम, भक्ति, योग आदि सब भूलता जा रहा था। उस खोज या अभ्यास का यही परिणाम होना था। यही विदेह गति की अवस्था है। अपनी आत्मा से सच्चाई की खोज के कारण, जाग्रत में खोजा, अभ्यास के अन्दर खोजा, सहस्त्रदल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न भंवर गुफा आदि के जो साधन किये उनमें खोजा। वहाँ क्या था? मालिक का प्रेम और उसकी खोज ही तो थी। जब अनुभव हो गया कि असलियत क्या है तो वह अवस्था आई। आज मैं इस अवस्था के

आने पर कुछ बन तो नहीं गया। दाता दयाल ने एक शब्द लिखा है:

मैना मैना रे मैना! मैना तन पिंजरे में रह कर
बोली बोले रे मै- ना॥

जब लग मैं है तब लग तू है, मोर तोर का झगड़ा।
मैं जब गया गया तब तू भी, अब किसका है रगड़ा॥
सतगुरु दीनी सै- ना॥ 1॥

'जो' 'तू' कहता यह अन्धा है, 'मैं' कहता दीवाना।
मैं मैं तू तू को जो छोड़े, वही है चतूर सयाना॥
यह है सच्ची बैना॥ 2॥

जब मैं हूँ तब गुरु नहीं है, गुरु जब है मैं नाहीं।
प्रेम की गली तंग है भाई, दोनों कैसे समाहीं॥
दोनो रहते हैं ना॥ 3॥

मोर तोर माया की रसरी, प्रानी फांस फँसाने।
तोड़ के रसरी हो गये न्यारे, फिर नहीं वह भरमाने॥
हो गये सच्चे मैना॥ 4॥

बकरी मैं कह गला कटावे, मैं मैं कर मिमयावै।
मैना मैं-ना वचन सुनावे, बेसन सक्कर खावे॥
कैसी मीठी है मैं-ना॥ 5॥

मैं - ना मै - ना बोले, बोल की रटन लगावे।
मैं को त्याग शान्त बन जावे, सुख आनन्द धुन गावे॥
पावे नित्त चैना॥ 6॥

'मैं' 'तू' भरम विकार मन का, मन माया का साथी।
जो मैं कहेगा दुख से मरेगा, कुचले अहम का हाथी॥
मैं तू दोनों है ना॥ 7॥

सुरत की पक्षी मैना बन कर, मैं-ना मैं-ना कहती।

सुन्न वृक्ष की डाल मैं बैठी दुख सुख अब नहिं सहती॥
दिन नहिं जहाँ रैना॥ 8॥

मैं-ना मैं-ना तू-ना तू-ना, यह सतगुरु की बानी।
बानी सुन सुन जो चित लावे, बने सहज निरवानी॥
माया फिर कभी व्यायै ना॥ 9॥

राधास्वामी शब्द सुरत की, धुनि गा गा के सुनावें।
जो गावें नित गाके सुनावें, भव पिंजरे नहीं आवे॥
यह बन जावे मैंना॥ 10॥

इस शब्द योग से क्या मिला? क्या परिणाम हुआ? यह कि मैं एक चैतन्य का बुलबुला हूँ और जीवन 'मैं मैं' या 'तू तू' के विचार भाव को छोड़कर व्यतीत होता है जिसमें व्याकुलता नहीं, चिन्ता नहीं, शोक नहीं, खोज नहीं। मैं इस अवस्था का नाम बेहद्दी के परे (अपार के परे) समझता हूँ। जब चेत आता है

दाता दयाल का अहसान मानता हूँ। वे कहा करते थे कि जो यह कहता है कि मुझे मालिक मिल गया वह झूठ बोलता है और जो यह कहता है कि मुझे नहीं मिला, वह अज्ञानी है इन शब्दों की समझ पहिले आती थी। अब इनके सारांश का ज्ञान हो गया।

तुम कौन हो और क्या हो, अपना पता बतादो।
क्या रूप नाम क्या है, कैसे हो यह चिता दो॥
कहता है कोई निर्गुण, कोई सगुण बताता।
मैं पूछता हूँ तुम से, तुम भेद यह सुना दो॥
सुनता हूँ नाम को नित, पर नाम रूप क्या है।

जब नाम है तो फिर अब, निज रूप भी दिखादो॥
मन से मनन व चिन्तन, आँखों से पाऊँ दर्शन।
वाणी का नित हो श्रवण, ऐसी विधि बतादो॥
गर हो तो आओ आगे, आँखों को खोल देखूं।

वैसे न मानूँगा मैं, तुम आके अब मनादो॥
हठ है ही प्रतिज्ञा, संकल्प दृढ़ है पूरा।
विनती यही है निश दिन, बिगड़ी मेरी बनादो॥
गुर देव संत सतगुरु, तुमसे लगन लगी है।
तुम को न भूलूं दाता, ऐसा मुझे चिता दो॥

यह शब्द मेरे जीवन के प्रारम्भ का भाव है। और जो मैं अब लिखा रहा हूँ, हद, बेहद और बेहद से पार यह है मेरे जीवन के अन्तिम भाव हैं अनुभव हैं और यही परिणाम हो रहा है।

अभी अभ्यास से उठा हूँ। कहाँ था? क्या अवस्था थी? बस केवल थी या बस था। कहाँ था कुछ नहीं कह सकता। दौड़-दौड़ कर मौन अवस्था आई मगर उससे उत्थान होता रहता है। जब मौन ही हो गया तो फिर क्या रह गया। न कहना न सुनना, न सोच न विचार। दाता दयाल मुझे पत्र में लिखा करते थे- चिराग गुल पगड़ी गायब उस समय समझ न आती थी कि

वह क्या कहते हैं। इस अवस्था का नाम मेरी समझ में बेहद्दी के पार (अपार के परे) है। आज मैं कबीर के शब्द के आधार पर अपने कर्म भोग वश गुरु से उत्तीर्ण होने के लिये काम करता हूँ। क्यों करता हूँ इसका पता नहीं। क्या करता हूँ यह भी पता नहीं। कबीर का शब्द है:-

उतते कोई न आइया, जासे पूछूं जाय।
इतते सब कोई जात है, भार लदाय लदाय॥

क्या हर एक मनुष्य जो भक्त है, योगी है साधु है, क्या इस की खोज नहीं करते कि हम कहाँ से आये हैं और कहाँ जायेगें। इस चक्र में समस्त धर्म और पंथ है। कबीर इसका आगे उत्तर देते हैं।

उतते सतगुरू आइया, जाकी मति बुधि धीर।
भव सागर के जीव को, काढ़ि लगाव तीर॥

कबीर कहते हैं कि उधर से सतगुरु आता है जो जीव को भव सागर से खींचकर पार कर देता है। मैं सोचता हूँ कि वह गुरु कौन है। जो भवसागर से खींचकर पार कर देता है। भवसागर क्या है? जीवन के हर प्रकार के भान बोध (Feelings) में खेलना भवसागर अर्थात शारीरिक, मानसिक, आत्मिक भान बोध (असहसासात) में खेलना। क्या भक्त भवसागर में नहीं है? क्या योगी हंस, परमहंस और संत भवसागर में नहीं हैं? यह अपने ही भान बोध में खेलते हैं। हाँ, इतना अन्तर है कि संसारी लोग भवसागर में डूबते रहते हैं अर्थात् अपने भान, बोध, अपने भाव विचार में डूबते रहते हैं। शोक चिन्ता फिक्र में फँसे रहते हैं मगर भवसागर से पार नहीं होते। यह मेरा निज अनुभव है। मैं इन कुल अवस्थाओं से गुजरा हूँ। इसलिये कोई धर्म कोई पंथ जो जीव को प्रेम भक्ति, योग ज्ञान का रास्ता बताता है। वह जीव को भवसागर में तैरने का साधन है या जरिया है। भवसागर में

तैरने के लिये आइडियल (इष्ट) का सहारा लेना पड़ता है जिस तरह नदी में या तालाब में तैरने के लिये बेड़ी की आवश्यकता होती है। सहारा लेना, चाहे किसी प्रकार का सहारा हो, राम का, कृष्ण का, गुरु का, मुहम्मद का। यह क्या है? यह आस्तिकपना है। किसी प्रकार का सहारा न लेना नास्तिकपना है। यह वेदों का ऐति मार्ग है। नेति मार्ग वाले कोई सहारा नहीं लेते। वह डूबते रहते हैं। कबीर कहते हैं:-

उतते कोई न आइया, जासे पूछूं जाय।
इतते सब कोई जात हैं, भार लदाय लदाय॥
उतते सतगुरु आइया, जाकी मति बुधि धीर।
भवसागर के जीव को, काढ़ि लगावे तीर॥

यह जो ऐति मार्ग है आस्तिकपना है। यह सहारा है। मेरा अनुभव कहता है कि लाख कोई सहारा ले, राम का, कृष्ण का, गुरु का का या किसी और क्या, भवसागर से पार नहीं जा

सकता। तैरता रहेगा, जब तक कोई पूर्ण सतगुरु नहीं मिलता और मनुष्य उसका सहारा नहीं लेता।

सतगुरु क्या करता है? जो कुछ सतगुरु ने मेरे साथ किया वह बताता हूँ। उन्होंने मुझे गुरु पदवी देकर भवसागर से पार होने का उपाय बताया। कैसे पार हुआ? अभी पार हुआ तो नहीं मगर रास्ता समझ गया। जब से यह अनुभव हुआ कि मेरा रूप लोगों की सहायता करता है जाग्रत में, स्वप्न में तथा मरते समय अर्थात् कई लोग मरते समय कह देते हैं कि बाबा फकीर आया और पालकी में मुझे ले जा रहा है। परीक्षा हाल में बैठकर लड़कों के पर्चे हल कराता है। विभिन्न देशों में मेरा रूप लोगों के अन्दर प्रगट होकर उसकी सहायता करता है आदि-आदि, मगर मुझे इन बातों की जानकारी तक नहीं होती कि कौन यह काम कर गया। अतः मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि हर एक मनुष्य की अपनी ही श्रद्धा विश्वास के कारण होता है, मैं समझ गया कि जो

कुछ मेरे अन्तर इस प्रकार के खेल होते थे वह मेरे मन का खेल था। मैं अब इससे आगे जाने का प्रयत्न करता रहता हूँ। आगे जाकर जहाँ पहुँचा हूँ वह क्या है। वहाँ रूप है न रंग है, न इष्ट है न सहारा है। संतों ने इस अवस्था के भिन्न-भिन्न नाम रखें हैं - अकाल पुरुष, अनामी, धाम, निजस्वरुप, या परम तत्व या परम पद, जहाँ जाकर न मैं रहती है न तू न ईश्वर न खुदा। इस अवस्था का नाम मैं बेहद्दी से परे (अपरम्पार के पार)।

संत कृपाल सिंह जी ने मुझे कहा था कि आप जो कहते हैं मगर यह वर्णन शैली खतरनाक है। मैं इनके साथ सहमत हूँ मगर इस रहस्य को खोलने के लिए विवश हूँ। इस रहस्य को गुप्त रहने के कारण भारत वर्ष की मानव जाति विभिन्न धर्म सम्प्रदाय और पंथों, डेरे धामों में बंटकर असलियत को न जानकर आपस में द्वेष ईर्ष्या, घृणा, बड़ाई, छुटाई के भावों को रखती हुई लड़-लड़कर मर गई। कष्ट उठाये। धर्म पन्थ की आड़

में सिर कटे। क्या कुछ इन सम्प्रदायों के कारण दुनिया में नहीं हुआ।

बाबा सावन सिंह तथा सन्त कृपालसिंह जी के कहने के अनुसार रहस्य ज्ञाता हूँ मगर गद्दियों के झगड़ों के कारण इनके मंडल या दायरों में भी घृणा द्वेष तथा मुकद्दमाबाजी मौजूद है। केवल इस को दूर करने के ख्याल से मैंने यह काम किया।

जब मैं किसी की जाग्रत में या समाधि में सहायता नहीं करता और न मुझे किसी प्रकार की जानकारी होती है तो फिर कोई दूसरा गुरु अथवा राम या कृष्ण या कोई इष्ट भी बाहर आकर किसी की सहायता नहीं कर सकता। जो कोई जिसका सहारा ले, जिस पर विश्वास ले आये, वही उनकी सहायता करेगा। जब यह सिद्ध हो गया तो फिर कोई बड़ा या छोटा न रहा। तुम यहाँ से चाहो, जिससे चाहो विश्वास और प्रेम से अपना

काम निकालो। मैंने एक बार एक नास्तिक से यह कह दिया था कि तुम अपने मस्तिष्क में ख्याल को जमा करके 1, 2, 3 से 100 तक गिनते रहा करो। वह व्यक्ति अपने मन को एकाग्र करने में सफल हो गया। अभिप्राय तो केवल मन की वृत्ति को एकाग्र करने से है। इसमें ईर्ष्या द्वेष, घृणा और झगड़ा कैसा? जैसे और जहाँ से कोई चाहे अपनी चित्त वृत्ति एकाग्र करे। जब वृत्ति घनिष्टता से एकाग्र हो गई तो जिस इष्ट को उपास्यदेव बनाया होगा वह अन्तर में प्रगट हो जायेगा और सांसारिक कठिनाइयों का हल भी उससे मिल जायेगा मगर आत्मसत्ता इससे कोसों दूर है वहाँ पर किसी प्रकार की ऋद्धि सिद्धि शक्ति की आवश्यकता नहीं किन्तु यह मार्ग में रुकावट सिद्ध होगी। फिर सतगुरु की आवश्यकता पड़ती है जो इस से आगे ले जाये। आगे की अवस्था में समस्त धर्म पंथ समाप्त हैं। केवल प्रकाश का जगत है और बेहद्दी उससे भी परे है।

अब हम चले अमरपुरी, तारे तोरे तार।
आवन होय सो आइये, सूली ऊपर बाट॥
सूली ऊपर घर करे, विष का करे अहार।
ता को काल अहार करे, आठ पहर हुशियार॥

जो इस अवस्था में चलता है वह सूली पर चढ़ता है। जब फाँसी दी जाती है तो आदमी के गले में रस्सा डालकर लटकाया जाता है। उसको पाँव रखने का कोई सहारा नहीं होता। इस अवस्था पर जाने के लिए जब तक समस्त सहारे नहीं टूट जाते कोई भी बेहद्दी से परे नहीं जा सकता। मैं अपने आप से पूछता हूँ कि जब तू सम्पूर्ण सहारों को छोड़ जाता है तो क्या हो जाता है? उस समय एक ऐसी अवस्था छा जाती है जिसका वर्णन मैं पहिले कर चुका हूँ। न नाम रहता है न इष्ट रहता है, न गुरु रहता है न ईश्वर। हम उस अवस्था से आये हैं। मैंने ता. 11 को सत्संग शुरु किया था तो कहा था कि कोई कहता है हमको

मालिक ने बनाया है, कोई कहता है मालिक आप ही यहाँ आया हुआ है। इसका निर्णय कोई क्या कर सकता है?

मेरे विचार से ऐसा है कि हमारे अन्तर में जो असली वस्तु है वह सूली पर चढ़ कर उस अकाल पुरुष में चली जाती है। वह अपने आप आई है और स्वाभाविक रूप से आई है मगर हमारे शरीर को, हमारे मन को, शब्द तथा प्रकाश को किसने बनाया है। इस सृष्टि का कर्त्ता या रचियता अर्थात् सूर्य, चन्द्र, तारे, ब्रह्माण्ड का कर्त्ता कोई और है। और जो वस्तु इसमें आकर भासती है और अपने अज्ञान से अपने आपको भूलकर इस संसार को सत्य मानकर इस में खेलती है या भवसागर में जाती है, वह और है। यह भवसागर रचा हुआ है और जो सुरत है वह सच्चे मालिक की अंश है, वह यहाँ आई और भूल गई कि वह उसकी अंश है।

जब यह ज्ञान हो जाता है तो सुरत आश्रय रहित होकर अपने स्वरुप का अनुभव कर लेती है। फिर यह जो भवसागर हद और बेहद्दी (पार और अपार) का खेल उसे प्रभावित नहीं कर सकता।

मेरा विषय था बेहद्दी से परे, तो अब बेहद्दी का परे क्या हुआ? राधास्वामी दयाल की बाणी-

सुरत हुई अतिकार मगनानी। पुरुष अनामी जाय समानी॥

यहाँ तक पहुँचने के लिए यह भक्ति, योग, विश्वास सब है किन्तु नदी के पार कोई तब जायेगा जो पहिले तैरना जान ले। यह जितने धर्म सम्प्रदाय हैं जो जीवों को इष्ट देकर, सहारा देकर एक प्रकार के उपाय बताकर भवसागर में तैरने का साधन बताते हैं किन्तु पार होने के लिए क्या वस्तु है? वह है शब्द विदेह।

हमारे अपने आप के होने के बोध में जो गति है वह है विदेह शब्द। जहाँ गति होगी वहाँ शब्द या आवाज़ अवश्य होगी। इस शब्द को मैं शब्द विदेह कहता हूँ।

शब्द शब्द बहु अन्तरा, सार शब्द चित देय।
जा शब्दे साहब मिलें, वही शब्द गह लेय॥

अब कौन सार शब्द है, जो विदेह है? शब्द तो नीचे भी है। शब्द जब होगा किसी गति या रगड़ से होगा। जहाँ गति है वहाँ प्रकाश का होना अवश्यंभावी है। यह बात वर्तमान विज्ञान सिद्ध करता है। जब यह ज्ञान हो जाता है तो वह मन, शरीर, आत्मा जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण, प्रकृति है, उसमें यह शब्द होते हैं। इस ज्ञान से जो मुझको हुआ कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, मैं रूप रंग रेखा से परे जाने को विवश हो गया। जब परे गया तो वहाँ मेरा हैपना है। इस हैपने की गति से जो आवाज़ होती है इसका नाम है सार शब्द। यह श्रेणी या अवस्था बहुत

ऊँची है मगर है यह ठीक। इसको मैं सार शब्द कहता हूँ। वह मेरा सार शब्द मेरे अपने शरीर के अन्तर रहता है। वही निज नाम है। उसी को राधास्वामी नाम कहते हैं। वही बेहद्दी से परे है। राधास्वामी दयाल ने लिखा है-

यही नाम निज नाम है, मन अपने धर लेय।

चूँकि मैं ढूँढता था-

तुम कौन और क्या हो, अपना पता बता दो।
क्या रूप नाम क्या है, कैसे ही यह जता दो॥

इसमें एक है कड़ी-

कहता है कोई निर्गुण, कोई सगुन बताता।
मैं पूछता हूँ तुम से, तुम भेद यह सुना दो॥

अब भेद का मुझे पता लग गया कि उस मालिक का न कोई रूप है न रंग है। वह अनामी है। यही राधास्वामी दयाल ने कहा है।

अकह अपार अगाध अनामी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी॥

पिछले समय में संतों ने इस भेद को गुप्त रखा था। केवल किसी अधिकारी को बताते थे मगर जिसको बताया उसको मना कर दिया कि किसी को न बताये। जैसे कबीर ने धर्मदास को कहा था-

धर्मदास तोहि लाल दुहाई। सार भेद बाहर नहीं जाई॥

राधास्वामी दयाल ने भी ऐसा ही कहा है-

खोज री पिया को निज घट में।
जो तुम पिया से मिलना चाहो, तो भटको मत जग में।
तीरथ बरत कर्म आचारज यह भटकावें मग में॥

जब लग सतगुरु मिलें न पूरे, पड़े रहोगे अध में।
नाम सुधारस कभी न पाओ, भरमो यानि खग में।।
पंडित काजी भेष शेख सब, अटक रहे डग डग में।
इसके साथ पिया नहीं मिलना, पिया
मिले कोई साध संग में।।
यह तो भूले विषय बास में,भर्म धर्म इनकी रग रग में।
बिना संत कोई भेद न पावे, वह तोहि कहें अलग में।।
जग लग संत मिलें नहीं तुमको, खाय
ठगोरी तू इन ठग में।
राधास्वामी शरण गहो तो, रलो जोति जगमग में।।

मैंने उस अलगपने को और पर्दे को हटाकर अलग कर दिया। केवल एक ख्याल से मानव जाति जो धर्म और पंथों में फँसी हुई है, इस भेद के न जानने के कारण जो आपस में भेद भाव, द्वेष है, यह कम हों। एक तरह सहारा लेना है। अपार के

मैदान में भव सागर में तैरना है। कोई किसी का सहारा लेकर तैरे, कोई किसी का इसमें क्या हानि है? एक दूसरे के सहारे का खंडन न किया जाये। यदि कोई सचमुच अपने असल घर जाना चाहता है वह केवल इस सार शब्द, निज या राधास्वामी नाम का सहारा लेकर अपने इष्ट पद पर पहुँच सकता है।

बाहरी और अन्तरीय संसार का त्याग

शब्द

उत्तर दिशा पंथ अगम अगोचर, अधर रंग एक देश हो।

चलि हो सजनी वह देश अमर है, जहं हंसन को वास हो॥

आवे जावे मरे न कबहूँ, रहे पुरुष के पास हो।

आलस मोह एकौ नाहिं व्यापै, सुपने सुरति न जास हो॥

पीओ हंस अमृत सुखधारा, बिन सुरही के दूध हो।

संशय सोग नहीं कुछ मन में, बिन मुक्ता गुन सूझो हो।

अक्षर मूल सदा मुख भाखो, चित्त दे गहो सुहाग हो॥

सेत तंबूल समरथ मुख साजे, बैठे लोक संझार हो।

हंसन के सिर मुकट विराजै, मानिक तिलक लिलार हो॥

आमनी होय उतरे भवसागर, तारे कुल और बंस हो।
सतगुरु भव खिची तन कपड़ा, मिल लेहो पुरुष कबीर हो॥

मेरी अवस्था उस तरफ जिसको अपार के पार कहा था, जाने की तैयारी है। जाता रहता हूँ। इन धर्म और पंथों के संस्कारों ने या मेरी प्रकृति ने किसी ऐसी अवस्था की ओर जाने को विवश किया है। रास्ते में कहीं ठहरा नहीं। यह शब्द 'आमन देवी' का है जो धर्मदास की स्त्री थी। वह कहती है-

उत्तर दिशा पंथ अगम अगोचर अधर रंग एक देश हो।

आज कल हजारों पंथों में सत्संगी हैं इनको कुछ मिला या न मिला मगर यह आवेश में आकर दूसरों को अपने पंथ में ढकेलने की कोशिश करते हैं, किन्तु मैंने ऐसा नहीं किया। जो अनुभव किया वह कहा। पच्छिम दिशायें हमारे शरीर के अन्तर

खोपड़ी के ऊपर के भाग में है। यह उत्तर कहलाता है। यहाँ 'आमन' कहती है-

'आमनी होय उतरे भव सागर जिन तारा कुल बंस हो।'

'आमन' कहती है कि वहाँ ऊपर संत कबीर मिलता है मगर दुनिया तो इस बाहरी गुरु को ही पूजते मर गई। कोई बाबा सावन सिंह, कोई बाबा फकीर, कोई दातादयाल को और कोई अपने-अपने गुरु और देवताओं को पूजता मर गया। यह इस स्त्री का कथन है, जिसका पति कुल सम्पत्ति दान देकर चेला बन गया। यह हमारे महात्मा आये हुये हैं। अपने-आप को कबीर पंथी कहते है। उस अवस्था तक जाने के लिए धन-दौलत से सुरत को हटाना पड़ता है। फिर अपना संसार छोड़ना पड़ता है। हमारा संसार-

चल हंसा सतलोक हमारे छोड़ो यह संसारा हो।

यह संसार काल है राजा, कर्म का जाल पसारा हो।
चौदह खंड बसे जाके मुख, सबको करत अहारा हो॥

अब देखो जीवों के कर्म है। धर्मदास कितने ही करोड़ की सम्पत्ति दान दे कर कबीर की शरण में गया था। उसको कबीर कहते हैं- धर्मदास तू संसार को छोड़ दे। वह संसार जो 14 लोक में है वही काल है। वह संसार क्या है? मन के अन्तर जितने भाव विचार चाहे किसी प्रकार के उठते हैं वह सब संसार है। गुरुओं ने गद्दियाँ बनाने के लिए लोगों को नाम दिया। इनमें कितने लोग नाम के अधिकारी हैं जो संसार छोड़ सकते हैं। वह जिन को संसार से मोह नहीं है। एक तो यह बाहरी दुनिया, एक हमारे मन के भाव विचार, यह दोनों संसार है। जब तक कोई आदमी अपने मन के संकल्प-विकल्पों को नहीं छोड़ता, वह अपने घर नहीं जा सकता। सतगुरु को नहीं मिल सकता। मुझ को, बाबा सावन सिंह को या कबीर को तो हर एक मिल सकता है मगर असली

कबीर नहीं मिल सकता, जब तक संसार न छोड़े। यह संसार छूटने पर ही अपार के पार जा सकता है अर्थात् अपार से पार होने के लिए मन के संकल्पों को छोड़ना है।

चल हंसा सत लोक हमारे, छोड़ो यह संसारा हो।
यह संसार काल काल है राजा, कर्म को जाल पसारा हो॥
चौदह खंड बसे जाके मुख, सब को करत अहारा हो।
जार बार कोयला कर डारत, फिर फिर ले अवतारा हो॥
ब्रह्मा विष्णु शिव तन धर आये, और को कौन विचारा हो॥

मैं इस संसार से निकल नहीं सकता था। जितने रूप रंग रेखायें अन्तर में प्रगट होती हैं वह सब संसार है। मुझे उस सच्चे गुरु की जो अकह-अपार अगाध, अनामी है, जिसको राधास्वामी भी कहते हैं, कबीर भी कहते हैं, खोज थी। उस तक पहुँचने के लिए संसार का छोड़ना आवश्यक है। बाहरी संसार को छोड़ना सुगम है, मगर मन के संसार को छोड़ना अत्यन्त कठिन है। मैं

इस अन्तरीय संसार को नहीं छोड़ सकता था। मैं गुरु के प्रेम में जितना नाचा और गाया यह मेरे मन का खेल था।

संकल्प-विकल्प अन्तर में उठते हैं। उनको जीव सत्य मानता है इसलिए वह जन्ममरण से रहित नहीं हो सकता। फिर उसको अपने घर जाने के लिए आमन देवी के कथनानुसार जो उत्तर दिशा में है मन के समस्त संकल्प-विकल्प, बुद्धि विवेक, ज्ञान तक सब का त्याग आवश्यक है।

मध्य प्रकास आप जहँ बैठे जोती शब्द उजियारा हो।
सेत स्वरूप शब्द जहं फूले, हंसा करत व्यवहारा हो॥

यह वह अवस्था है जहाँ मन के छूटने पर प्रकाश आता है। वहाँ हँस जाकर आनन्द लेता है। वह है उत्तर दिशा में हमारा देश जहाँ से हम आकर संसार में फँस गये।

कोटिन सूर चन्द्र छवि जहँ एक एक रोम उजियारा हो॥

यह सत लोक की महिमा वर्णन की गई है कि उनके अन्तर से करोड़ों सूर्य बनते हैं। जहाँ हमने जाना है वह है कबीर, राधास्वामी या अपना देश। उस प्रकाश से परे एक देश है जहाँ हर समय अमृत बरसता है। वहाँ अस्तित्व है। क्या कहूँ वह क्या है? शब्द नहीं मिलते मगर वह देश है। मैं वहाँ तक जाता हूँ वहाँ ठहर नहीं सकता। यह जो सत्संग का काम करता हूँ यह भी मेरा संसार है जिसमें मैं फँसा हूँ। मैं यह काम करना नहीं चाहता। कुछ लिखना नहीं चाहता, यह मेरे कर्म हैं या गुरु आज्ञा का पालन समझो। कर्म करता हूँ, जानता हूँ यह मेरा संसार नहीं है। मैं गुरूयायी का काम करता हूँ मगर फँसता नहीं। कोई मान सम्मान करता है मगर कोई प्रसन्नता नहीं। कोई मुझे बुरा कहे चिन्ता नहीं।

कहे कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरुष दरबारा हो॥

कबीर धर्मदास को कहते हैं कि ऐ धर्मदास ! अन्तरीय जगत में मन के सब भाव विचार, ज्ञान आनन्द, मनानन्द, विवेकानन्द जो हैं यह भी छोड़ने हैं। जब तक यह साथ हैं बेहद्दी या अपार से पार न जा सकेगा। यही 'आमन देवी' कहती है।

आमन होय उतरे भवसागर, जिन तारे कुल वंस हो।
सतगुरू भाव खिंची तन पकड़ा, मिले हो पुरूष कबीर हो॥

वह है अपार के परे। हम को इतनी खुशी है कि उस अपार के परे जो सन्त कबीर है, सच्चा गुरू है उसका पता मिल गया, उसका ठिकाना मिल गया। गुरु की प्राप्ति यही है कि जब संसार छूट जाता है। अब यदि कोई अपनी बुद्धि से उस असली और सच्चे कबीर या गुरू या दातादयाल या कुछ और नाम रख लो, को जानना चाहते हैं तो उसका ज्ञान तो मैंने दे दिया। रास्ता बता दिया। दुनिया में जितने यह पंथी है, गुरू करते हैं। कोई गुरू को रुपया, कपड़ा देता है, कोई गुरू की गद्दी रुपया दे कर

बना देता है अथवा किसी गुरु का ढिंढोरा पिटाता है कि अमुक गुरु ने मरते समय जीव को सतलोक पहुँचा दिया, यह सब पाखंड और काल का जाल है। जिस गुरु ने तुमको उस लोक पहुँचाना है, उस गुरु का नाम है सच्चा ज्ञान, सच्ची समझ, सच्चा विवेक। बाहरी गुरु ने केवल सीधा रास्ता बताना है और बताना है कि बाहरी और अन्तरीय संसार को छोड़ दे, जिस तरह कबीर ने धर्मदास को कहा है। यदि फूँक मार कर कबीर धर्मदास को सतलोक ले जा सकता तो क्यों कहता कि धर्मदास संसार छोड़ दे। मैंने अपनी ड्यूटी संस्कार और अधिकार को न देखते हुये भी सच्चाई से पूरी कर दी। जब तक कोई आदमी अपनी बुद्धि का संसार न छोड़ेगा वह सतपद की प्राप्ति नहीं कर सकता। उस संसार को छोड़ने के लिए क्या करना चाहिये या मैं क्या करता हूँ? मेरी सुरत यह कोशिश करती रहती है कि नाम को पकड़ो। जब तक किसी की सुरत अन्तर में धुन या नाम को न पकड़ेगी,

उसका संसार नहीं छूट सकता। सुमिरन से देह का संसार समाप्त होगा। ध्यान से मन का भान न रहेगा। प्रकाश भी संसार है क्योंकि प्रकाश ही रचना करता है। बेहद्दी से पार जाने का केवल नाम है।

नाम बिना उद्धार न होई॥

मेरा चित्त अब चेलों के साथ खेलने से उकता जाता है। मैं चाहता हूँ कि मेरे पास कोई न आये। आप दुनिया वाले बाहरी बातों में फँसे हो। साधन आपसे नहीं बनता। जो साधु भिक्षा लेकर खाते हैं उनका मन निर्मल नहीं हो सकता। उनके मन में संकल्प-विकल्प रहते हैं। मैं दुनिया वालों के कल्याण के लिए कहता हूँ कि किसी से दान मत लो। प्रेम व निष्काम सेवा कुछ और वस्तु है। यदि कोई किसी की प्रेम से सेवा करे तो स्वीकार करने योग्य है। मैं कुल्लू में बख्ताबर सिंह आई.ई.ओ. साहब के घर आया इन से कोई भेंट लेता नहीं क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह

लोग संसारी अज्ञानी हैं। अज्ञानी जीव का धन लेना साधु या गुरु को अपने इष्ट पद पर पहुँचने नहीं देता। मगर यदि अज्ञानी जीव दें नहीं तो उनका कल्याण नहीं होता। तब ही राधास्वामी मत में आदेश है-

शिष्य को ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय।
गुरु को ऐसा चाहिये, शिष्य का कुछ न लेय॥

हाँ, जो जीव सेवा करते हैं उनके कल्याण के लिए उस पैसे को किसी दुखी, बीमार के लिए खर्च कराने से इस संसार में लाभ होता है। यह दान पुण्य, प्रेम, सेवा यह सब संसार में अत्यन्त आवश्यक है, होनी चाहिये। इनके बिना जीवों का मन निर्मल नहीं हो सकता। जन्म-जन्मातरों की सिद्धियाँ और कर्म होते हैं, तब कोई जीव इस नाम को पकड़ता है। मैं यह नहीं कहता कि निचली श्रेणीयाँ, प्रेम भक्ति, विवेकानन्द-मनानन्द आदि गलत हैं। नहीं, जब तक जीव इनसे गुजरेगा नहीं, आगे जा

नहीं सकता। इस समय करोड़ों लोग संत मत में हैं, नामधारी हैं। यह सच्ची शिक्षा या सच्चा ज्ञान कोई देता नहीं। मैं इन श्रेणियों या अवस्थाओं को पार करके अपार से परे होकर क्या बन गया? मेरे पास केवल दो बातें हैं- एक सच्चा ज्ञान, एक सच्चा हित। वह सब को देता हूँ। साधारण भोले-भाले जीवों को चाहिये कि वह साधुओं के जाल में न फँसते हुये केवल शब्द गुरु को माने। वही सच्चा गुरु है जो जीव को अपने घर ले जायेगा।

शब्द गुरु को कीजिए, बहुते गुरु लबार।
अपने अपने स्वाद को, ठौर ठौर बट मार॥

रहनी

अमर फल बिरला गुरु मुख खाय॥
अम्बर ऊपर डेरा डाले, अमृत पी पी कर तृप्ताय॥
जीवन मरे न जग में आवे, आवागवन के फंद कटावे।
कर्म करे और बने न कर्त्ता, अहंभाव चित्त में नहीं लावे।
बन्ध निर्बन्ध न मुक्त अमुक्त, इसकी महिमा वरण न जाय॥
हद बेहद दोनों से न्यारा, अगम अलख में वासा पाय।
बसे खसे नहिं सगुन न निर्गुन, कोई कैसे कहकर समझाय॥
रूप रंग रेखा नहीं उसमें, नाम अनाम का भेद मिटाय।
राधास्वामी दया पात्र सोई सांच, सांच झूठ का भरम नसाय॥

आज मैंने जो 'बेहद्दी से परे' के लेखों में अपने जीवन के परिणाम के विचार वर्णन किये हैं उसको मासिक पत्र 'शिव' के

सम्पादक को भेजने का विचार कर रहा था। मैंने अपने जीवन में दाता दयाल महर्षि जी का यह शब्द प्रथम बार सुना है। अनहद झंकार पुस्तक से। मेरे अपने जीवन का अनुभव सामने आता है। मुझ पर एक ऐसी अवस्था आ जाती है अर्थात् मेरे हैपने में जो कुछ मैं हूँ जिसमें न शारीरिक भान होते हैं न मानसिक, न आत्मिक बोध होते हैं, न प्रकाश होता है न शब्द होता है मगर फिर भी कुछ रहता है। वह क्या है? न वाणी में शक्ति है न बुद्धि में समझ कि उसे जान सके मगर वह है अवश्य। वहाँ न अपने सतगुरु का प्रेम है, न ईश्वर का ख्याल, न कोई इच्छा। क्या है क्या नहीं? चेतनता आने पर सोचता हूँ कि क्या इस अवस्था में कुछ नहीं है? नहीं, है कुछ। मैं तो यह समझता हूँ कि उसमें कुछ नहीं मगर यह भी वर्णन शैली है उस अवस्था के प्रगट करने की। मैं यह भी कहता हूँ कि इस अवस्था में सब कुछ है क्योंकि उसमें से ही शब्द, प्रकाश, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के सब भाव बोध

होते हैं। उसका नाम शायद संत मत ने 'कुल' रखा हो। कुल में ही अंश है और अंश में ही कुल है। यह भी एक वर्णन शैली है।

दाता दयाल का भाव इस शब्द से क्या है मैं अपने अनुभव के आधार पर ही कह सकता हूँ। उनका क्या अनुभव है मुझे पता नहीं। फिर वह अमर फल क्या है? उस अवस्था का नाम अमर फल है। अब यदि यही अमर फल है तो फिर गुरुमुख कौन हुआ? वह जिसने किसी बाहरी पूर्ण पुरुष को अपना इष्ट बनाया और उनकी आज्ञानुसार चला। दाता दयाल ने मुझे आज्ञा दी थी सुमिरन, ध्यान और भजन करने को। और भी बहुत सी हिदायतें की, जैसे मोह-माया छल, चतुराई को छोड़ना, जीवों के अवगुणों को न देखना, परोपकारी होना। चूँकि मुझको उन के भाव का जो वह मेरे लिए रखते थे और जहाँ वह मुझे ले जाना चाहते थे उसका पता लगता था, उन्होंने यह गुरु पदवी देकर मेरी कमी को पूरा कर दिया तो गुरुमुख कौन है? वह जो गुरु की बात

को समझता है, स्पष्ट शब्दों में गुरुमुख वह है जो गुरुज्ञान प्राप्त करता है। दातादयाल की वाणियों को पढ़कर अब मैं अनुभव करता हूँ तो अचम्भे में रह जाता हूँ कि वह पवित्र विभूति सचमुच मेरी ही तड़प या भावना को, कि मालिक मुझको मानव रूप में मिल जाए, पूरा करने को मानव चोले में आई थी और यह सच्चा सिद्ध होता है। इस शब्द में ऐसे गुरुमुख की व्याख्या करते हैं जो इस अमर फल को पा लेता है।

अम्बर ऊपर डेरा डाले, अमृत पी पी कर तृप्ताय।
जिये न मरे न जग में आये, आवागवन के फंद कटाय॥

वह गुरुमुख कैसे जियेगा, कैसे मरेगा? मुझे पता नहीं कि दाता जी का क्या भाव है? मुझे समझ न आती थी कि वह जो मेरी अवस्था है वह अजर अमर है। इस से ही सब कुछ तथा समस्त शारीरिक, मानसिक, आत्मिक भाव बोध निकलते रहते हैं। चूँकि यह ज्ञान हो गया कि यह सब मेरे अपने ही अन्तर से

निकलते हैं, मैं इनको अन्य नहीं समझता। इसलिए मैं उनमें फँसता नहीं। आवागमन का भ्रम तो तब होगा अथवा आवागमन में तब आयेगा जब उसको यह विश्वास होगा कि जो उसके अन्तर से विचार भाव निकलते हैं वह उससे अलग है। जब मुझे यह विश्वास हो गया कि यह मुझ से अलग नहीं है, निज स्वरूप (जात) से गुण निकलते रहते हैं तो मैं आवागमन में नहीं आ सकता। इस अवस्था में उसके अन्तर से भाव विचार स्वाभाविक उठते रहते हैं। उसके अनुसार वह सोचता भी है और नहीं भी सोचता है। मैं काम भी करता हूँ मगर उस सोचने और काम करने का अहंभाव नहीं रहता। यही दातादयाल अगली कड़ी में कहते हैं-

कर्म करे और बने न कर्त्ता, अहंभाव चित में नहि लावे।

वह गुरुमुख जो कर्म करता है वह स्वाभाविक होते हैं। उसमें वह फँसता नहीं।

हद बेहद दोनों से न्यारा, अलख अगम में वासा पावे॥

उस अवस्था में रहने वाले को हद और बेहद्दी (पार और अपार) के परे रहने वाला कहते हैं तो जो कुछ मैंने इन सत्संगों में जो हद और बेहद्दी से परे के शीर्षक में वर्णन किया है उसका समर्थन पहिले तो कबीर के शब्द से हुआ है जैसा कि उन्होंने कहा है-

हद में रहे सो मानवा बेहद रहे सो साध।
हद बेहद दोनों तजे, तिस का मता अगाध॥

आज दातादयाल के शब्द से मेरे अनुभव की पुष्टि हुई-

बसे खसे नहीं, सगुन न निर्गुन, कोई कैसे कह समझाय॥

मेरा अन्तःकरण सत्संगियों की बातों को सुनकर विवश हो गया कि मैं मालिक के किसी सगुण रूप को न पूजूँ, मगर चूँकि मैं बचपन में मालिक को मिलने को निकला था, जीवन के अनुभव ने सिद्ध कर दिया कि सगुण रूप भी जिसको मैं मालिक

समझकर पूजा करता था वह मेरे ही अन्तर का भाव विचार था। निर्गुण, ईश्वर, परमेश्वर, निराकार को पूजता था, वह भी मेरी अपनी ही विचारधारा थी। दातादयाल ने ठीक कहा है कि वह न बसता न खसता है अर्थात् निर्गुण और सगुण को मानकर उसमें आनन्द लेना भी छूट गया।

रूप रंग रेखा नहीं उसमें, नाम अनाम का भेद हटाये।

न नाम का विचार है न वहाँ अनाम का विचार भाव है। सब छूट गये। दाता दयाल कहा करते थे कि (इबादत गुम रही असत) पूजा करना भटकना है। इष्ट पद तो अपने स्वरूप में विलय हो जाना है।

ऐ दाता दयाल ! तूने दया कर दी कि गुरु पदवी देकर मेरा जो भ्रम था वह मिटा दिया क्योंकि मैं निर्गुण और सगुण के चक्कर में आया हुआ था। अब मैं ऐसा समझता हूँ क्योंकि मेरे

सत्संगियों के अनुभव से जो अनुभव मुझे हुआ उसने यह विश्वास करा दिया, इसलिए इस नाशवान जगत के इस नाशवान शरीर में रहता हुआ तेरे असली भाव को समझने योग्य हो गया। मैंने अपना यह अनुभव सत्संगियों को ही भेंट किया है क्योंकि असली और सच्चा गुरु तो मेरा अपना स्वरूप है।

ऐसा गुरुमुख गुरु को प्यारा, बानी नित गुरु गुन गावे।

किस गुरु का प्यारा जिसका गुणगान करता है। वह गुरु है अकह, अपार, अगाध, अनामी, परम, तत्व, आधार कूटस्थ। जब गुरु मुख इस अवस्था में होता है क्या वह जुबान से कुछ बोल सकता है? क्या वह मन से कुछ सोच सकता है? नहीं। वह केवल उस अवस्था में रहता हुआ उस अवस्था की जो दशा है उसमें विचरता है। उस दशा में विचरने का नाम बिन वाणी गुरु गुण गाना है। क्यों गुण गाता है? क्योंकि उस अहसान के बदले में जो उसे किसी से मिला, वह उस भाव को अपने

अन्तर में रखता हुआ मन में अहसान का भाव महसूस करता है। यह दुनिया की बात है। वहाँ जाकर या उस अवस्था में जाकर अहसान मानता है उसका जिसने यह अवस्था दिलाई। वह इस अहसान के भाव को प्रगट नहीं कर सकता।

राधास्वामी या पात्र सोई साँचा, साँच झूठ का भरम नसाय॥

दातादयाल का कथन है कि राधास्वामी की दया का कोई ही सच्चा पात्र निकलता है। मुझे खुशी है कि मैं दातादयाल की दया का पात्र बना। मैं दया पात्र बन नहीं सकता था मगर उन्हों ने यद्यपि मेरा प्रेम उनसे सच्चा था मगर अपने अज्ञान के कारण निकल नहीं सकता था। उन्होंने जीवन भर मुझे सँभाला। उन्होंने मेरी सहायता की और आज मैं होश में आकर उनका अहसान मानता हूँ कि उन्होंने इस अमर फल प्राप्त करने के लिए यह काम दिया।

साँच झूठ को मिटाना क्या है? किस को सच कहूँ? किस को झूठ कहूँ ? एक तत्व है जिससे रचना होती है और उसमें ही समाती रहती है। यहाँ कौन बुरा है कौन अच्छा है? क्या सत है क्या असत है? सब कुछ ही सत है। जो है सो है। यहाँ आकर मौन होना पड़ता है। यही अभ्यास का ध्येय है।

चश्म बन्दो गोश बन्दो लब बन्द।
गर न बीनी सिरें हक बर हक बखंद॥

फिर सिरें हक क्या हुआ? यही कि एक तत्व है, मालिक है, निजस्वरूप है। उसमें क्षोभ होता रहता है। लहरें उठती रहती हैं, रचना होती रहती है और उसी में समा जाती हैं। यह बाहर की दुनिया है। अन्तर की दुनिया मानव की सुरत उसकी अंश है। उस मालिक से ही, सम्पूर्ण रचना व्यक्तिगत रुप से होती रहती है और उसमें समाती रहती है। इस अनुभव के आधार पर जब

हमारी सूरत उस अवस्था में चली जाती है तो उसके लिए न झूठ है न सच है। कबीर ने कहा है-

एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार।
जैसा है तैसा रहे, कहें कबीर विचार॥

परिपूरक

अपार के पार का लेख भेजने से पहले आँख बन्द हुई। अपने जीवन का आदि-अन्त सामने आता है। शरीर के त्याग के बाद क्या होगा? क्या अच्छा हो ! मालिक, मौज या सतगुरु मुझे सामर्थ्य दे कि मैं बता सकूँ कि मरने के बाद क्या होता है? जो कुछ भी अनुभव में आया वह इस जीवन में आया। उसमें एक बोधन शक्ति है। इसके अनेक रूप हैं। कहीं उसको सुरत कहते हैं। फिर इसी का नाम हम आत्मा कह देते हैं। उसी की तीसरी हालत का नाम मन, बुद्धि, चित्त अहंकार कह देते हैं और वही फिर शरीर में व्यक्तित्व कहलाती है। इस अनुभव के बाद मैं कौन हूँ? मैं अकह, अपार, अगाध, अनाम अकाल अवस्था से बनाया गया हूँ। कई महापुरुष कह देते हैं कि वह स्वयं आया हुआ है।

दोनों ही बातें ठीक है। वर्णन शैली अलग-अलग है। इससे मेरी बोधन शक्ति में एक भ्रम था अज्ञान था। उसके कारण अपने ही आप भ्रम में आकर आप ही ढूँढने लगा। ढूँढ-दूँढ कर अन्तरीय बोध से अपने-आपको शान्ति दी।

सोचता हूँ तुमने जीवन में क्यों यह काम किया। "विवशता या बेबसी"। यह मौज थी, चूँकि मौज ने निबल, अबल और अज्ञानी जीवों की सहायता, जगत कल्याण आदि का काम दिया था। पता नहीं क्यों दिया था, इसलिए मैंने अपनी नीयत से इस भवसागर में रहने वाली मानव जाति को संदेश दिया है कि धर्म कर्म के नाम पर तुम जो अज्ञान वश आपस में भेद भाव, द्वेष, घृणा रखते हो यह चली जाये। जब तक जीवन है इस ज्ञान के आधार पर कि हम सब उस अकह, अपर, अनामी तत्व के अंश हैं, मौज से आये हैं और मौज ले जायेगी, काम

करो। एक दूसरे के काम आओ, आपस में द्वेष न रखो, जीओ और जीने दो।

मैं सच्चे हृदय से चाहता हूँ कि मानव जाति का कल्याण हो।

चेतनता आई। 'मैं' बनी। मैं को तेरी खोज थी। उस खोज में ऐ दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल की पवित्र विभूति तेरे चरणों में गई, तूने पाला-पोसा, संभाला और प्रोत्साहन दिया। अज्ञान का पर्दा, जिसके कारण मैं व्याकुल था, दूर किया। आपने काम दिया। मैंने जिस अनुभव के आधार पर काम किया। मालूम नहीं क्या किया, क्या न किया। आपका अहसान हर समय चेतन्यता की अवस्था में, स्वप्नावस्था में, तुरिया तथा तुरियातीत में रहता है। जब अपार के पार चला जाता हूँ तो वहाँ न 'तू' रहता है और न 'मैं' रहता हूँ।

आनन्द कहां है ?

मेरे घट में गुरु अविनाशी बसे मन बुद्धि भक्ति के रस से रसे॥

बाग में फूल गुलाब का, खिल कर शोभा देय।
सिंध में मोती सीप हों, ले जो जिसका होय॥
सब अपने अपने भाव बसें॥

बन में नाचे मोर गण, फूले फले बन राय।
जिसको जैसी गति रुचे, गति मति से हर्षाय॥
प्राकृत दशा से सकल हसें॥

चाह नहीं संसार की, भक्ति प्रेम की चाह।
राधास्वामी की दया, गुरु के हाथ निवाह॥
वर्षा प्रेम की घट बरसें॥

सत्त नाम धुन मीठी, सुरत की मैना बोल रही।

बैठी शब्द वृक्ष की डाली, सुन सुन

कर धुन हुई मतवाली॥

हित चित से होई निहाली, फुदक-

फुदक कर डोल रसी॥

सहस्त्र कमल दल पर कभी बैठी, कभी

त्रिकुटी के महल में बैठी।

चढ़ कर सुन्न की चोटी ऐंठी, ग्रंथी

घट की खोल रही।

राधास्वामी-2 नित दिन गाती, चरण

कमल में शीश झुकाती।

आनन्द हर्ष, पाय मगनानी, मैं ना जग अनमोल यही॥

समय-समय की बात है। आज सत्संग में दो शब्द पढ़े गये। मैं कहा करता हूँ कि यह सत्संग जितने होते हैं मेरे अपने ही

भाव का प्रगट रूप होते हैं। जीवन क्या है? इन दोनों शब्दों में यदि तुम विचार करो तो अपने ही आपका खेल है। जैसा-जैसा जिसका अपना भाव है वैसा-वैसा वह आनन्द लेता है। जिसने मालिक को गुरु कृपा से समझ लिया कि सब कुछ मेरे अपने अन्तर में ही है तो अपने अन्तर में ही वह आनन्द लेता है। उस आनन्द में भी यही कहते हैं-

मेरे घट में गुरु अविनाशी बसें।

जब तक यह विश्वास नहीं आता कि मालिक, सतगुरु अपने अन्तर में है तब तक कोई यह आनन्द ले नहीं सकता। जब तक मनुष्य गुरु को या मालिक को बाहर समझता है, उसके आनन्द में स्थिरताई नहीं है। तुम लोग दर्शनों के लिए आये। जब तक मेरे पास रहे, तुम्हारा श्रद्धा विश्वास है, तुम खुश हो। दुनिया को भूले रहते हो, मग्न रहते हो। जब चले जाओगे फिर क्या होगा?

फिर यह जो तुम्हारा आनन्द है यह न रहेगा। इसलिए संतों के मार्ग में या ऋषियों के मार्ग में हमेशा यह कहा गया है कि भगवान या गुरु या मालिक ऐ मानव ! तेरे अन्तर रहता है। जब तक यह विश्वास नहीं आता कि वह अन्तर में है, तब तक जीवन आनन्द और सुख पूर्वक व्यतीत नहीं हो सकता।

तुम लोग हैदराबाद से तथा बिलारी से आये हुये हो। कैथल से माई आई हुई है। मैं अपनी ड्यूटी पूरी कर जाना चाहता हूँ। बाहरी गुरु का यही काम है कि वह निश्चय करा दे कि ऐ मानव ! वह राम, भगवान तेरे अन्तर रहता है अन्यथा यह जो इस संसार का जीवन है वह आनन्द में नहीं व्यतीत होता। अब किसी ने फकीर चन्द को गुरु माना, किसी ने बाबा सावन सिंह को या महर्षि जी को माना, मगर मैंने अपने सत्संगों में यह सिद्ध कर दिया कि न बाहर का फकीर चन्द तुम्हारे अन्तर में आता है। मुझे स्वयं इस बात का विश्वास नहीं आता था। यह

तो मुझ को तुम सब लोगों से प्राप्त हुआ। मैंने यह काम केवल इसलिए किया है कि जीव हमेशा अपने अन्तर में स्वयं आनन्द ले। पराधीनता छोड़ दे। रामायण में लिखा है-

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।

जो मनुष्य किसी दूसरे के आश्रित है चाहे वह शारीरिक रूप से हो, चाहे मानसिक रूप से हो, चाहे आत्मिक रूप से, उसको सुख नहीं है। जिसका शरीर रोगी है, स्वयं अपनी क्रिया नहीं कर सकता। वह किसी तरह भी खुश नहीं रह सकता क्योंकि वह दूसरों के आश्रित है। एक आदमी अपने मन से किसी बाहरी वस्तु से प्रेम करता है अथवा बाबा फकीर से प्रेम करता है वह बाबा फकीर हमेशा नहीं रहेगा, दुनिया में नहीं रहेगा और हर समय तुम्हारे साथ नहीं रहेगा। मैं तुम्हारे सामने 24 घंटे तो नहीं बैठ सकता। इसलिए संतों का मार्ग मनुष्य को यह निश्चय करा देना है कि ऐ मानव! वह जो शक्ति है जिसको तू प्रेम करना

चाहता है वह तेरे अपने घट में हर समय रहती है। यदि यह निश्चय हो जाये या विश्वास आ जाये तो फिर क्या होगा? तुम अपने अन्तर में ही आनन्द ले सकते हो। भक्ति से प्रेम से आनन्द ले सकते हो। हम सुख के लिए बाह्य वस्तुओं का सहारा लेते हैं। सुख न धन में है न पुत्रों में और न बाहर के गुरु में है न बाहर के जगत में है। सुख का भण्डार मनुष्य के अपने अन्दर है। यही दातादयाल कहते हैं-

मेरे घट में गुरु अविनाशी बसे, मन बुद्धि भक्ति के रस में रसे॥

तो अब गुरु को अपने अन्तर तथा यदि तुम सनातनी हो तो मालिक को या राम को अथवा किसी और सम्प्रदाय के हो तो अपने इष्ट को अपने अन्तर समझो। जब तुम अन्तर में प्रेम करोगे तो तुम्हारा मन, बुद्धि व दुनिया के पदार्थ उस प्रेम के कारण आनन्द और सुख देंगे।

कठिनाई यह है कि उस भगवान के या उस राम के रूप का अथवा वह कैसे अन्तर में बसता है, इसका ज्ञान नहीं है।

जब तक दृष्टि ऊँची नहीं जाती तब तक गुरु के सगुण रूप को अपने अन्तर में प्रेम करना आवश्यक है। किसी ने राम को मान लिया। उसने राम की मूर्ति को अन्तर में बना कर आनन्द लिया। किसी ने कृष्ण को मान लिया, किसी ने गुरु को मान लिया। प्रेम मनुष्य के अपने अन्तर में है। आप लोग आये। व्यास पूजा हो गई। तुम लोगों ने मेरी पूजा कर ली। मेरी क्या ड्यूटी है? तुमको यह विश्वास कराना कि वह सतगुरु तुम्हारे अन्तर रहता है। वह मालिक तुम्हारे अन्तर रहता है।

यदि किसी के अन्तर वृत्ति एकाग्र नहीं होती तो मैं क्या करूँ। मेरे तो वश में कुछ नहीं। हम सत्संग में इसलिए जाते हैं कि हमको यह विश्वास हो जाये कि सतगुरु हमारे अन्तर रहता है। अब मैं तो किसी के अन्तर नहीं रहता। भारत में सब से प्रथम

व्यक्ति धार्मिक और पांथिक जगत में मैं हूँ। जिसने इस रहस्य को खोल कर वर्णन किया है, कहा तो सबने मगर उन्होंने प्रमाण नहीं दिया। दातादयाल ने अपने शब्दों में अथवा दूसरे गुरु महात्माओं ने यह प्रमाण नहीं दिया कि वह गुरु तुम्हारे अन्तर कैसे रहता है। दुनिया गुमराह हो गई, भटक गई कि बाबा फकीर हमारे अन्तर रहता है, गुरु नानक हमारे अन्तर रहता है या दाता दयाल हमारे अन्तर रहते हैं। उसका कोई रुप है नहीं मगर शुरु-शुरु में मानना पड़ता है। यदि किसी पूर्ण पुरुष का सत्संग मिल जाये तो वह बाहरी गुरु क्या करता है ?

घट में घट दिखलाय दे, सतगुरु पुरुष महान।

वह तुमको यह निश्चय करादे कि गुरु बाहर नहीं है। तुम्हारे अन्तर है। ऐसा महापुरुष जो बाहर है उसका नाम सतगुरु है। कौन यह विश्वास कराता है। मैं निन्दा नहीं कर रहा। बात सच्ची कहता हूँ। जीव भूल भ्रम में है। दाता दयाल कहते हैं-

मेरे घट में गुरु अविनासी बसें, बुद्धि भक्ति के रस से रसें।

बाग में फूल गुलाब का, खिलकर शोभा देय।

सिंध में मोती सीप हों, ले जो जिसका होय॥

सब अपने अपने भाव वसें॥

यह बाग हमारा मन है, दिमाग है। इसमें गुलाब का फूल तुम्हारा इष्ट है, तुम्हारा गुरु है, तुम्हारा प्रेम है। जब तक मनुष्य अपने अन्तर में बैठ कर उस रूप से प्रेम नहीं करेगा तब तक सुख नहीं, आनन्द नहीं। जो जिस के भाग्य में है, जैसा-जैसा जिसका विश्वास है उसके अनुसार वह अपने भाव से लेता है। मैं नहीं चाहता संसार फकीर चन्द को पूजे। मैं चाहता हूँ कि जो फकीर चन्द कहता है उनको समझे और उस गुरु को समझ कर और अन्तर में समझ कर आनन्द लें।

वन में नाचे मोर गण, फूले फले बन राय
जिसको को जैसी गति रुचे, गति मति से हरषाय॥
प्राकृत दशा से सकल हसें॥

वह कहते हैं वन तुम्हारा दिमाग है। जैसी-जैसी जिसकी रुचि है उसके अनुसार अपना इष्ट बना कर अपने अन्तर में आप आनन्द लो मगर हम लोग बजाय आनन्द लेने के हम अपना इष्ट विपता बना लेते हैं, इष्ट नहीं बनाते। डर, भय, चिन्ता, फिक्र इन विचारों को अपने मस्तिक में लेते हैं। जो विचार तुमने अपने अन्तर में लिये हैं वही तुम्हारे अन्तर फुरेंगे। इसलिए यह प्रेम का मार्ग है। अब इसमें श्रेणियाँ हैं। इस गुरु रूप की श्रेणी है। जिसका जैसा भाव है वैसा-वैसा वह अपने में आनन्द लेते हैं। वह श्रेणी या गुरु के रूप भिन्न-भिन्न हैं। यह हर एक आदमी अपनी करनी के अनुसार उनका विश्वास करता है। वह दातादयाल का दूसरा शब्द जो पढ़ा गया है-

सत नाम धुन मीठी, सुरत की मैना बोल रही।
बैठी सुरत वृक्ष की डाली, सुन सुनकर धुन हुई मतवाली॥
हित चित्त से हो गई निहाली, फुदक फुदक कर डोल रही॥

यह नाम की महिमा क्यों आती है? मैं स्वयं सोचता हूँ। यह नाम मनुष्य की खोज का परिणाम है। हम खोजी (Researcher) हैं। हम चलते रहते हैं। ज्यों-ज्यों एक आदमी एक ख्याल को लेता है और जब उसमें आनन्द ले लेता है, फिर उसका यह आनन्द फीका पड़ जाता है। यह स्वाभाविक है। तुम देखो ! किस चाव से मनुष्य शादी करता है। वह आनन्द लेता है। फिर कोई समय आता है उसका जी स्त्री को देखने को नहीं चाहता। आदमी धन कमाता है, खुश होता है। समय आ जाता है, वह उस धन से उपराम हो जाता है। यदि उपराम न होता तो अमरीका के बड़े-बड़े करोड़पति आत्म हत्या न कर जाते अथवा राजा लोग राज्य छोड़ कर सन्यास न लेते। इसी प्रकार

जब मनुष्य अपने अन्तर में इष्ट बना लेता है तो जब उसको एक आनन्द का अनुभव हो जाता है फिर वह दूसरे आनन्द की इच्छा करता है। फिर तीसरे की फिर चौथे की। मेरी अब यह अवस्था आ गई कि यह नाम भी मुझको खेंच नहीं सकता। नाम में भी मुझको आनन्द नहीं आता। यह मेरा अनुभव है।

लोग कहेंगे मैंने क्या कह दिया। दाता का शब्द है-

ला मकानी में घर किया और या मकानी बन गया।

ला मकानी मेरी वह अवस्था है जिसको मैं कहता हूँ कि अब नाम भी मुझ को खींच नहीं सकता। उसमें से नाम प्रगट होता है।

दातादयाल का दूसरा शब्द है-

नाम गुरु नामी में है, वे निशानी में निशां।

नाम गुरु नामी में कैसे हो सकता है? इस तरह जैसे मैंने कहा कि अब नाम के सुनते-सुनते नाम आनन्द-दायक नहीं रहा। फिर जिस वस्तु से या जिस तत्व से नाम निकलता है वह जब उससे उपराम होकर अपने आप में ठहर जायेगा वही तो गुमनामी है। अब रह गया सवाल वे निशानी में निशाँ। जब मैं कहता आता हूँ कि केवल एक ख्याल ने कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, यह जितने निशान, रूप रंग पैदा होते हैं मेरे अन्तर यह प्राकृतिक है। उनका आनन्द लेते-लेते ज्ञान हो गया तो वह सब निशान जो मेरे अन्तर प्रगट होते थे स्वाभाविक ही सुरत उनसे अलग होकर अपने स्वरूप में स्थित होती है। यह है बेनिशानी में निशां। यह प्रमाण है कि जो मेरा अनुभव निकला, वही दातादयाल, राधास्वामी दयाल और कबीर का है।

गुप्त रहा जब रहा अनाम।
जब प्रगट तब धरिया नाम॥

यही अपार के परे की अवस्था है। मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि जो नाम देने वाले थे दातादयाल, वह स्वयं अनाम अकाल, अगाध अवस्था में मेरे लिये महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज बनकर आये थे। वहाँ का संस्कार दे गये।

आज प्रात: अभ्यास में था। सहस्त्रदल कँवल के अनेक दृश्य देखे। त्रिकुटी के खेल देखे, महाशून्य के खेल देखे। प्रकाश देखे। अब मन इन सब से भर गया। अब अस्तित्व चाहता है अपने होने को भी भूल जाना।

सुरत हुई अति कर मगनानी।
पुरुष अनामी जाय समानी॥

यहाँ जाकर खेल खत्म हो जाता है। मैं आपको अपने जीवन का अनुभव बता रहा हूँ। मैंने कितने आनन्द लिये। बाहर में भी आनन्द लिये। दाता दयाल के साथ प्रेम करके यदि मुझे

आनन्द न मिलता तो मैं आरती करने क्यों जाता? आनन्द ही तो था। मेरी अब अन्तिम अवस्था या ठिकाना आ गया अपार के परे का मगर जब तक आदमी जीवन के इन सब अनुभवों के आनन्दों को भोग नहीं लेगा उसको उनसे उपराम नहीं आयेगा। भोग भोगने के बाद शान्ति मिलती है। तब इष्ट पद आता है। इसलिए दाता दयाल कहते हैं-

सत नाम धुनि मीठी, सुरत की मैना बोल रही।
बैठी शब्द वृक्ष की डाली, सुन सुनकर धुन हुई मतवाली॥
हित चित से हो गई निहाली, फुदक फुदक कर डोल रही॥

यह जीवन के आनन्द का खेल है। कभी सहस्त्र दल कंवल में आनन्द लिया, कभी त्रिकुटी में, कभी सुन्न में आनन्द लिया। आनन्द मिलता रहता है। मैंने यह सब आनन्द लिये। अब सुरत इस नाम को भी भूल जाना चाहता है। दुनिया कहेगी कि मैं पथभ्रष्ट हो गया, गुमराह हो गया। ऐसा नहीं है किन्तु मैं

तुम को सिद्धान्त की बात बताता हूँ। एक वस्तु का जब अनुभव हो जाता है, भोग भोग लेता है, फिर वह भोग आदमी को खींच नहीं सकता। धन हमने बड़े लालच से कमाया इकट्ठा हो गया, उपराम हो गये। फिर हम पैसे की चिन्ता नहीं करते। कोई आसक्ति नहीं रहती।

तो यह जीवन यात्रा है। मेरी अवस्था ऊँची अर्थात् बेहद्दी या अपार के परे चली गई। इसलिए यह लेख अपार के परे लिखकर उसको पुस्तकीय रूप दिया है। शीघ्र ही छप जायेगी।

तुम लोग गृहस्थी हो। तुमको चाहिये कि पहिले भोग भोग लो। जब तक संसार का भोग भी तुमने नहीं भोगा, तुमको संसार से वैराग्य नहीं आयेगा, यह कर्म क्षेत्र है। जब तक जीवन है भोग को भोगो मगर जिस भोग के भोगने से तुम को अनुभव हो जाये, उसकी लालसा मत करो। हमको हवस हो जाती है। आदमी 40-50 वर्ष का हो गया। स्त्री मर गई। वह पिछली बातों

की हवस करता है यह ठीक नहीं है। एक वस्तु का अनुभव कर लिया। बस अनुभव करने के बाद उसे त्याग दो। आगे चलो।

जो व्यक्ति अनुभव करने के पश्चात् भी उसे छोड़ता नहीं, वह खेंचतान में रहता है। उसको जीवन में शान्ति नहीं मिलती। हम लोग अनुभव नहीं करते। हम हिर्स और हवस करते है। जैसे हम पाकिस्तान से आये। कई अमीर थे। अनुभव ने सिद्ध कर दिया कि ऐसा होना ही था। अब यह लालसा कि हमारा देश छूट गया, गलत है।

टंडन साहब (बिलारी वाले) की स्त्री है बीमार है। कल मैं गया। मुझको बोली, मरने चली। कहने लगी। बाबा जी मैं जाना चाहती हूँ। क्यों? क्योंकि शरीर का भोग भोग लिया। दुनिया देख ली। अब दुनिया में जी नहीं लगता। जी इसका भोग भोगने के बाद उपराम हो गया। इसी तरह अभ्यास की श्रेणी है। जो मनुष्य सारे जीवन एक ही श्रेणी या स्थान पर अभ्यास करता

रहता है, वह मूर्ख है। उसकी उन्नति नहीं हो सकती। वह इष्ट पद पर नहीं पहुँचता। यह श्रेणियाँ हमेशा एक जैसा आनन्द नहीं देतीं। जो बड़े अभ्यासी हैं वह अपने अन्तर में आकर देखें कि क्या वह एक स्थान पर हमेशा अभ्यास कर सकते हैं। जीवन अनुभव के आधार पर है। अपने अनुभव से लाभ उठाओ। मैंने अपने जीवन के अनुभव से लाभ उठाया। दातादयाल के साथ कितना प्रेम था। जब अनुभव हुआ कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, यह मानसिक रुप है तो दाता दयाल का गुरु रुप मेरे लिये बदल गया। वहाँ आनन्द लिया। शब्द में गुरु का रुप बदल गया। अब क्या है? अब शब्द से भी उपराम हो गया।

जपा मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय॥

अब मैं इस अवस्था की प्रतीक्षा करता हूँ। यहाँ जाने का यत्न करता रहता हूँ। आप लोग आये हो। मुझे गुरु मानते हो।

गुरु का काम है ज्ञान देना तथा रहस्य बता देना। जीव भिन्न-भिन्न प्रकार के संशय भ्रमों में फँसा हुआ है। इस संशय भ्रमों से या तो कोई तुमको निकालेगा या तुम स्वयं अपनी समझ से निकलोगे। अपनी समझ प्राप्त करने के लिए जीवन के बड़े अनुभव की आवश्यकता है। दूसरे महापुरुष जिन्होंने अनुभव किया हुआ है, उनके अनुभव से लाभ उठाना चाहिये। वह तुम्हें ऐसे अनुभवी पुरुषों के सत्संग से प्राप्त होगा। यही सत्संग की महिमा है। सौ वर्ष की इबादत से ढाई घड़ी का सत्संग बेहतर है।

क्यों ? क्योंकि पूजा करते रहने से तुम्हारा अपना ही अनुभव होगा और अनुभव कर करके किसी निश्चय पर जाओगे। जिसने अनुभव किया हुआ है उसकी बातें सुनकर उसका अनुभव प्राप्त करके तुम को ज्ञान हो जायेगा। जैसे एक आदमी है। वह तो स्वयं शराब पीता है, गलियों में गिरता है और बर्बाद हो जाता है। उसको बर्बाद होने के बाद जब कभी समझ आयेगी तब

सोचेगा कि जो कुछ मैंने किया गलत किया मगर यदि वह किसी शराबी को गंदी नालियों में गिरते हुये अथवा बर्बाद होते हुये देख ले तो यदि उसको समझ है तो वह स्वयं शराब पीना छोड़ देगा और समझ लेगा कि इसने यह काम किया और इस का यह परिणाम निकला। इसी प्रकार सत्संग की महिमा है। सत्संग में जो महापुरुष होते हैं वह उन श्रेणियों को पार किये होते हैं। वह अपने जीवन का अनुभव बताते हैं। मैंने क्या किया? पुस्तकें तो नहीं पढ़ाई, गीता नहीं पढ़ाई, वाणियाँ नहीं रची, केवल अपना अनुभव वर्णन किया। अब मैं अपना अनुभव वर्णन किये जा रहा हूँ कि जीवन में सब आनन्द लिये। अब सुरत कहाँ जाना चाहती है?

तू मुबश इजला कमालई असत वेश।
तू दर ओ गुम शू विसालई असत वेश॥

मगर यहाँ कौन आयेगा? जिसको अनुभव हुआ है, जिस तरह मैं हूँ।

आप आये, मैंने आप लोगों को सत्संग करा दिया। अब मैं सत्संग कराने के योग्य नहीं रहा। मेरी अवस्था अब अपार के परे चली गई मगर चूँकि पिछली वासना मेरे अन्तर में है कि जो कुछ मिलेगा वह बता जाऊँगा, वह मेरा कर्म बना हुआ है। उसको भोगता हूँ। जो अनुभव हुआ वह वर्णन कर दिया।

सबको शान्ति।

शब्द

अविगति पार न पावै कोई॥ टेक॥

अविगति नाम पुरुष को कहिये,
अगम अगोचर बासा।
ता को भेद संत कोई जानै, जा
की सुरति समोई॥ 1॥

अविगति अच्छर जग से न्यारा,
जिभ्या कहा न जाई।
वेद कितेब पार नहिं पावै, भूलि
रहे नर लोई॥ 2॥

अविगति पुरुष चराचर व्यापै,
भेद न पावे कोई।
चार वेद में ब्रह्मा भूले, आदि
नाम नहिं पाई॥ 3॥

अविगति नाम की अद्भुत महिमा,
सुरति निरत से पाई।
दास कबीर अमरपुर वासी, हँसा
लोक पठाई॥ 4॥

शब्द

जहवा से आयो अमर वह देसवा॥ टेक॥

पानि न पौन न धरती अकसवा।

चाँद न सूर न रैन दिवसवा॥ 1॥

बाम्हन छत्री न सूद बैसवा।

मुगल पठान न सैयद सेखवा॥ 2॥

आदि जोति नहिं गौर गनेसवा।

ब्रह्मा विस्नु महेस न सेसवा॥ 3॥

जोगी न जंगम मुनि दुरवेसवा।

आदि न अन्त न काल कलेसवा॥ 4॥

दास कबीर ले आये संदेसवा।

सार सब्द गहि चलो वहि देसवा॥5॥

-॥ इति॥ -

परमसंत पं. फकीर चन्द जी महाराज के सूत्र

1. इन्सान बनो। अपनी नीयत साफ रखो।
2. हमेशा आशावादी रहो।
3. सुमिरन मन को शांत करता है।
4. मन, वचन और कर्म से शुद्ध रहो।
5. अपने निजी स्वार्थ के लिए औरों को धोखा मत दो।
6. तुम्हारा शरीर हरिमन्दिर है, प्रभु स्वयं इसमें रह रहे हैं। उसको खोजो, वह अवश्य मिलेगा।
7. आत्मा और परमात्मा के मिलाप में मन ही रुकावट है।
8. मन को वश में कर लो, आत्मा स्वयं परमात्मा की ओर खिंची चली जाएगी।
9. सादा ज़िन्दगी और ऊँचे ख्याल रखो।
10. नफ़रत से नफ़रत को नहीं काटा जा सकता।
11. जो वायदा आपने किया है, उसे पूरा करो, यही मानवता है।
12. कर्म के कानून से कोई नहीं बच सकता।
13. जो सलूक आप अपने से नहीं चाहते, वह दूसरों से हरगिज मत करो।
14. अपना बोझ दूसरों पर डालने की कोशिश न करो।

फकीर लाइब्रेरी चैरिटेबल ट्रस्ट

मानवता-मन्दिर, सुतैहरी रोड, होशियारपुर।